₹१००/- वार्षिक

दिव्य जीवन

जब तक आप जनता और जनार्दन की सेवा में अपना सर्वस्व त्याग देने को तैयार न हो जायें, तब तक आप अध्यात्म-मार्ग पर चलने के लिए बिलकुल योग्य नहीं होंगे। साधक के लिए आवश्यक योग्यता चित्त की समता है। दुःख, कष्ट और जीवन की परीक्षा के अवसरों पर मन को उद्वेग-रहित और शान्त रखने का भरपूर प्रयत्न करें। हृदय के अन्तस्तल से प्रभु को प्रार्थना करें और प्रतीक्षा करें। सहायता अवश्य मिलेगी। भगवान् अवश्य अनुग्रहपूर्वक ध्यान देंगे। श्रद्धा तथा साहस न छोड़ें। निराश न हों। ईश्वर पर पूर्ण, दृढ़ तथा अनन्य श्रद्धा रखें। वे दुःख सहन करने के लिए आपको पर्याप्त बल देंगे, आपकी समस्त कठिनाइयाँ और दुःख दूर करेंगे।

—स्वामी शिवानन्द

जून २०२१

विश्व–प्रार्थना

हे स्नेह और करुणा के आराध्य देव!
तुम्हें नमस्कार है, नमस्कार है।
तुम सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान् और सर्वज्ञ हो।
तुम सच्चिदानन्दघन हो।
तुम सबके अन्तर्वासी हो।

हमें उदारता, समदर्शिता और मन का समत्व प्रदान करो।
श्रद्धा, भक्ति और प्रज्ञा से कृतार्थ करो।
हमें आध्यात्मिक अन्त:शक्ति का वर दो,
जिससे हम वासनाओं का दमन कर मनोजय को प्राप्त हों।
हम अहंकार, काम, लोभ, घृणा, क्रोध और द्वेष से रहित हों।
हमारा हृदय दिव्य गुणों से परिपूरित करो।

हम सब नाम–रूपों में तुम्हारा दर्शन करें।
तुम्हारी अर्चना के ही रूप में इन नाम–रूपों की सेवा करें।
सदा तुम्हारा ही स्मरण करें।
सदा तुम्हारी ही महिमा का गान करें।
तुम्हारा ही कलिकल्मषहारी नाम हमारे अधर–पुट पर हो।
सदा हम तुममें ही निवास करें।

—स्वामी शिवानन्द

सद्गुणों का विकास करें

सद्गुणों का विकास कीजिए। आप अपने अन्दर अच्छी आदतों को डालिए। भले कर्म कीजिए। नियमित ध्यान कीजिए। ईश्वर में निवास करने का प्रयास कीजिए। सारे दोष, दुर्बलताएँ तथा बुरे विचार मूलतः नष्ट हो जायेंगे।

अपने हृदय में कोई भी कामना न रखें। सबसे मिल कर रहें। सबको गले लगायें। सबसे प्रेम करें। अनुकूलनशीलता एवं नि:स्वार्थ सेवा की भावना का विकास करें। अथक सेवा के द्वारा सभी के हृदय में प्रवेश करें। इस प्रकार सबके अन्दर एक ही आत्मा का दर्शन करें।

सारे भ्रामक नाम–रूपों को भूल जाइए। हर क्षण, हर वस्तु में भगवान् श्री कृष्ण के दर्शन कीजिए। आप परम शान्ति, आनन्द तथा अमृतत्व का उपभोग करेंगे।

—स्वामी शिवानन्द

दिव्य जीवन

Vol. XXXII	जून २०२१	No. 3

प्रश्नोपनिषद्

प्रथम प्रश्न

कबन्धी एवं पिप्पलाद

अथोत्तरेण तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया विद्ययात्मानमन्विष्यादित्यमभिजयन्ते।
एतद्वै प्राणानामायतनमेतदमृतमभयमेतत्परायणमेतस्मान्न
पुनरावर्तन्त इत्येष निरोधस्तदेष श्लोकः ।।१०।।

१०. तप, ब्रह्मचर्य, श्रद्धा एवं विद्या द्वारा आत्मा का अन्वेषण करते हुए वे उत्तर मार्ग द्वारा सूर्यलोक को प्राप्त होते हैं। यही प्राणों का आश्रय है, यही अमृत है, यही अभय है तथा यही परम लक्ष्य है। इसे प्राप्त कर पुनः नहीं लौटते हैं। यह (अज्ञानीजनों के लिए) निरोधस्थान है। इस विषय में यह मन्त्र है।

(पूर्व–अंक से आगे)

महागुरुवर्णमातृकास्तोत्रम्

MAHAGURU-VARNA-MATRIKASTOTRAM

ज्ञानभास्कर महामहोपाध्याय श्री एस. गोपाल शास्त्री

षाड्गुण्याश्रितसर्वशक्तभगवत्पादाब्जभृङ्गायित–

स्वान्तं षड्रिपुमर्दनं शममुखैः षट्साधनैर्भूषितम्।

षट्चक्रोपरिपद्मशोभिमहसं षड्वक्त्रपादाश्रितम्

षड्भावाकुलदेहदुःखहतये भक्त्या भजे सद्गुरुम्॥२९॥

२९. षड्भावयुक्त (अस्तित्व, जन्म, वर्द्धन, परिवर्तन, क्षय एवं नाश) शरीर के कारण हुए दुःखों से मुक्ति हेतु, मैं भक्तिभावपूर्वक श्री गुरुदेव की आराधना करता हूँ जिनका हृदय षड्गुण सम्पन्न (ज्ञान, वैराग्य, श्री, धर्म, यश एवं ऐश्वर्य) सर्वशक्तिमान् भगवान् के पावन चरणकमलों में अनुरक्त भृंग के समान है, जिन्होंने षड्रिपुओं (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद एवं मात्सर्य) का नाश कर दिया है, जो षट्सम्पत्ति (शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा एवं समाधान) से सम्पन्न हैं, जो षड्चक्र(मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्धि एवं आज्ञा) के ऊपर स्थित सहस्रार–कमल की दिव्य आभा से विभासित हैं तथा जो षडानन भगवान् कार्तिकेय के परम भक्त हैं।

साष्टाङ्गप्रणतिर्भवत्वविरतं सर्वात्मनः सद्गुरोः

सर्वावद्यनिवारणे पदसरोजाते सुसिद्धिप्रदे।

सीमातीतयशोनिधेः शुभमतेः सूक्ष्मज्ञचूडामणेः

सूक्त्यानन्दितसज्जनस्य सरसालापामृतस्राविणः॥३०॥

३०. श्री गुरुदेव को बारम्बार श्रद्धापूर्वक नमन है जो असीम यश के भण्डार हैं, जिनका मन शुभ विचारों से परिपूर्ण है, जो सूक्ष्मप्रज्ञासम्पन्न विद्वज्जनों में चूड़ामणि हैं, जो अपने ज्ञानपूर्ण वचनों से सज्जनवृन्द को आनन्दित करते हैं तथा सब पर अपनी मधुरवाणी रूपी अमृत की सदैव वृष्टि करते हैं। उनके सर्वपापनिवारक एवं सर्वसिद्धिप्रदायक श्रीचरणों में मेरा नित्य साष्टांग प्रणिपात है।

(क्रमशः)

(अनुवादिका : स्वामी गुरुवत्सलानन्द माता जी)

संन्यास का आदर्श

सद्गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज

'संन्यास' शब्द का आशय पूर्ण त्याग है — 'सम्' का अर्थ 'पूर्ण' तथा 'न्यास' का अर्थ छोड़ना अथवा त्यागना है। यद्यपि पारम्परिक रूप से यह हिन्दू धर्म के अनुयायी के जीवन की चतुर्थ अवस्था है, परन्तु प्राचीन समय से ही हमें विवेक-वैराग्य से परिपूर्ण ऐसे अनेक युवा संन्यासियों के उज्ज्वल उदाहरण प्राप्त होते हैं जिनके लिए जीवन की प्रथम तीन अवस्थाओं विशेषतया गृहस्थ एवं वानप्रस्थ अवस्था में प्रवेश पूर्णतया अनावश्यक था।

संन्यास का प्रारम्भ इच्छाओं के त्याग से होता है जो एक लम्बी प्रक्रिया है। केवल गहन विवेक एवं ज्वलन्त वैराग्य के द्वारा ही संन्यास को इसकी पूर्ण गरिमा एवं पवित्रता के साथ स्थायी बनाये रखा जा सकता है। संन्यास की प्राथमिक शर्त अथवा योग्यता विवेक है; विवेक की अग्नि के समक्ष कोई अपवित्रता तथा सांसारिक पदार्थों के प्रति कोई इच्छा टिक नहीं सकती है अर्थात् विवेकवान् व्यक्ति की समस्त अशुद्धियाँ, दोष तथा इच्छाएँ समूल नष्ट हो जाती हैं।

यदि एक संन्यासी इस प्राथमिक योग्यता 'विवेक' से सम्पन्न नहीं है, तो वह वस्तुत: एक सांसारिक मनुष्य ही है। इसके विपरीत यदि कोई मनुष्य संसार में रहते हुए अपने नियत कर्तव्य-कर्मों को करते हुए इस योग्यता से सम्पन्न है और इसका अपने व्यावहारिक जीवन में अभ्यास करता है, तो वह वास्तविक संन्यासी है चाहे संसार उसे ऐसा नहीं मानता हो। यदि त्याग एवं संन्यास के आदर्श को उचित प्रकार से समझ कर जीवन में गम्भीरतापूर्वक इसे आचरित किया जाये, तो मानवता की अनेक समस्याओं का समाधान सम्भव हो सकता है। यह एक गलत धारणा है कि संन्यास का अर्थ कर्मों का त्याग तथा अपने उत्तरदायित्वों से मुख मोड़ना है। श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है, ''विद्वज्जन इच्छाओं से प्रेरित कर्मों के त्याग को संन्यास समझते हैं तथा ज्ञानीजन कर्मफल के त्याग को संन्यास उद्घोषित करते हैं।''

अविवेकी आलोचक तथा भौतिकवाद का अनुसरण करने वाले अज्ञानी जन कहते हैं, ''त्याग एवं निवृत्ति के पथ पर चलने वाले संन्यासी आलसी होते हैं। वे समाज के लिए निरुपयोगी हैं। वे नर मधुमक्खियों के समान अकर्मण्य होते हैं। वे जंगलों, गुफाओं एवं पर्वतों में अपना समय व्यर्थ गँवाते हैं। वेदान्त में कुछ सार नहीं है। यह केवल स्वप्नदर्शियों का सिद्धान्त है। संन्यास-आश्रम की कोई आवश्यकता नहीं है। ब्रह्म कहाँ है? क्या आप अपने ब्रह्म के हमें दर्शन करा सकते हैं? ब्रह्म का कोई अस्तित्व नहीं है। यह तथाकथित वेदान्तियों की कल्पना मात्र है। त्याग, तपस्या एवं इन्द्रिय संयम से कोई लाभ नहीं है। हमें थोड़ा श्रम करना चाहिए, खाना-पीना चाहिए तथा संसार के सुखों का आनन्द उठाना चाहिए।'' आधुनिक जगत् में इस सुखवादी दर्शन के असंख्य अनुयायी हैं। यदि आप इस प्रकार के किसी व्यक्ति से वार्तालाप करेंगे तो वह कहेगा, ''मैं वेदान्ती नहीं हूँ क्योंकि वेदान्त मेरी समझ से परे है। योग भी मेरे लिए उचित नहीं है; योग का अभ्यास करना असम्भव है क्योंकि यह स्वास्थ्य एवं जीवन के प्रति उत्साह को पूर्णत: नष्ट कर देता है। मैं मूर्तिपूजा एवं भगवान् के अवतारों में विश्वास नहीं करता हूँ; ये सब

'द डिवाइन लाइफ' पत्रिका १९६८ में प्रकाशित आलेख का अनुवाद

१ जून गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज का संन्यास दीक्षा दिवस है।

पुराण भी काल्पनिक हैं। ये उन अज्ञानी मनुष्यों के लिए हैं जो स्वयं कुछ विचार नहीं कर सकते हैं।'' इस प्रकार की बातें करने वाला मनुष्य जीवन के अर्थ एवं आदर्श की अवहेलना करके, भौतिकवाद का अनुसरण ही करता है।

आज त्याग एवं संन्यास की भावना की अत्यधिक आवश्यकता है। यदि मानवता की सर्वोच्च आकांक्षाओं का पोषण किया जाना है, यदि मनुष्य को परम सत्य का ज्ञान प्राप्त करना है तथा इस ज्ञानालोक का प्रसार करना है; यदि मनुष्य को भगवद्-अनुभव प्राप्त करना है, इसकी महत्ता को अपने व्यक्तिगत उदाहरण से प्रकट करना है तथा मानवता की नि:स्वार्थ सेवा करनी है, तो संन्यासाश्रम की व्यवस्था को बनाये रखना अत्यावश्यक है, इसे समाप्त नहीं किया जा सकता है।

प्रत्येक धर्म में संन्यासी होते हैं जो एकान्तवास एवं ध्यान का जीवन व्यतीत करते हैं। उदाहरणत: बौद्ध धर्म में भिक्खु, इस्लाम धर्म में फकीर, सूफी मत में सूफी फकीर तथा ईसाई धर्म में फादरस एवं रिवरेन्ड्स होते हैं। किसी भी धर्म की महत्ता-महिमा पूर्णत: समाप्त हो जायेगी यदि उस धर्म से उन संन्यासीवृन्द को पृथक् कर दिया जाये जो त्याग एवं भगवद्-चिन्तन से पूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं। क्योंकि ये संन्यासी ही हैं जो विश्व के धर्मों को सुरक्षित बनाये रखते हैं। संन्यासी ही दु:ख, कष्ट से पीड़ित गृहस्थजनों को शान्ति एवं सान्त्वना प्रदान करते हैं। ये जन-जन को जीवन का वास्तविक अभिप्राय समझाते हैं तथा उनके जीवन को दिव्य आनन्द से भर देते हैं। संन्यासीजन मानव की आध्यात्मिक आकांक्षा, परम सत्य के साक्षात्कार एवं उसके अद्भुत परिणामों के महान् उदाहरण-स्वरूप होते हैं। वे औपनिषदिक ज्ञान, अध्यात्म विद्या, आत्म-ज्ञान एवं शान्ति के सन्देशवाहक होते हैं। उनमें से अनेक संन्यासी ऐसे होते हैं जो रोगियों की देखभाल करते हैं, असहाय-अनाश्रित जनों की सेवा करते हैं, वे '**तत् त्वम् असि**' महावाक्य की महत्ता एवं वेदान्तिक ज्ञान के माध्यम से निराश को आशा, हताश को प्रसन्नता, दुर्बल को बल, अज्ञानी को ज्ञान तथा कायर को साहस प्रदान करते हैं।

एक संन्यासी के संसार छोड़ने का अभिप्राय यह है कि वह किसी एक परिवार से बँध कर नहीं रहना चाहता है। जिस परिवार में उसने जन्म लिया, वह उस परिवार से अपने सम्बन्ध को इसलिए समाप्त कर देता है क्योंकि उसके परिवार के सदस्य, उनके व्यक्तिगत स्वार्थों तथा पारिवारिक हितों के प्रति उसकी अनासक्ति को पूर्णतया स्वीकार करने में असमर्थ होते हैं। एक संन्यासी के लिए आत्मा का सम्बन्ध ही सच्चा सम्बन्ध होता है। वह सर्वत्र एकमेव अद्वितीय आत्मा का अनुभव करता हुआ स्वयं को सम्पूर्ण विश्व से सम्बन्धित मानता है तथा मानवता की सेवा करता है। उसका त्याग नकारात्मक नहीं है, अपितु यह संसार की वस्तुओं एवं जीवन के उचित बोध पर आधारित है। उसका संसार के प्रति व्यवहार अनासक्त सेवा के भाव से प्रेरित होता है। आसक्ति ही समस्त दु:खों का मूल है। इच्छा आसक्ति को जीवन्त रखती है, और इच्छाओं की पूर्ति करने से आसक्ति एवं इच्छाओं में वृद्धि होती जाती है। यदि आपके पास कुछ वस्तु-सम्पदा नहीं है; और आप कहते हैं कि आपने संसार का त्याग कर दिया है तो आपका यह कहना निरर्थक है; इसी प्रकार यदि आपके पास अपनी इच्छाओं को पूरा करने के साधन अथवा कार्यक्षमता नहीं हैं, और आप कहते हैं कि मुझमें किसी सांसारिक पदार्थ की इच्छा नहीं हैं, तो आपका यह कहना व्यर्थ है। त्याग एवं अनासक्ति, आपके वैराग्य,

आत्मसंयम और आत्मविलोपन के सूचक हैं। इससे अभिप्राय है कि व्यक्ति के अहंकार का पूर्ण नाश हो गया है। इस प्रकार संन्यास महानतम तपस्या है।

एक संन्यासी का अनुभव 'ईशावास्य उपनिषद्' के प्रथम मन्त्र **'ईशावास्यमिदँ सर्वं'** पर आधारित होता है। यह सब कुछ वस्तुत: परमात्मा से परिव्याप्त है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड भगवान् का साकार स्वरूप है। इस जगत् के समस्त प्राणी एक ब्रह्माण्डीय परिवार के सदस्य हैं। पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि एवं आकाश में, वन, पर्वत एवं घाटियों में, नदियों एवं हरित मैदानों में, वृद्धों एवं युवाओं में, सबमें एवं सर्वत्र भगवान् ही हैं। संसार में कहीं कुछ 'मेरा' नहीं रह जाता है; यह संसार अपनी बन्धन-शक्ति को खो देता है। ''मैं उसका हूँ और वह मेरा है'', इस कथन का स्थान ''मैं सबका हूँ और हे प्रभु, सब आपका है'' ले लेता है।

विवेक प्रत्येक प्रकार के आध्यात्मिक त्याग का पूर्वगामी आधार होता है, क्योंकि त्याग तीव्र वैराग्य का परिणाम होता है और हम जानते हैं कि वैराग्य का कारण विवेक होता है। बिना विवेक के सच्चा वैराग्य उत्पन्न नहीं हो सकता है। ऐसे त्याग का कोई मूल्य नहीं है जो जीवन में प्राप्त हुई असफलता अथवा निराशा का परिणाम हो। वैराग्य केवल तभी स्थायी रह सकता है जब वह सत्य के उचित बोध पर आधारित हो।

आप सबको आत्म-संयम का अभ्यास करना चाहिए, नि:स्वार्थ सेवा करनी चाहिए। मनुष्य का हृदय संकुचित एवं संकीर्ण होता है। बहुत कम व्यक्तियों का हृदय विशाल एवं उदार होता है। मनुष्य केवल अपने भाई-बहिन और ऐसे कुछ मित्रों से ही प्रेम करता है जो कष्ट-विपत्ति के समय उसकी सहायता करते हैं। आप ऐसा अनुभव नहीं करते हैं कि समस्त विश्व मेरा परिवार है। आपको उदारता, सात्त्विक विचारों, सद्ग्रन्थों के स्वाध्याय तथा सेवा द्वारा हृदय की संकीर्णता को पूर्णत: समाप्त करना होगा। वेदान्त कोई दर्शन मात्र नहीं है, राजयोग एक सिद्धान्त मात्र नहीं है। ये मौलिक एवं जीवन्त अनुभव हैं। राजयोग उसी प्रकार से एक अनुभव है जिस प्रकार से आम की मधुरता का आस्वादन करना एक अनुभव है। राजयोग उन साधकों का जीवन्त अनुभव है जो प्रतिदिन प्रात:काल ४ बजे उठ कर ध्यान करते हैं।

आध्यात्मिक अनुभव सर्वोच्च त्याग का परिणाम होता है। एक वास्तविक संन्यासी ही इस धरा का सर्वाधिक शक्तिशाली सम्राट् है; वह किसी से कुछ नहीं लेता है, सदैव दूसरों को देता ही रहता है। संन्यासियों ने ही भूतकाल में महान् एवं भव्य कार्य किये; वे ही वर्तमान काल एवं भविष्य में चमत्कारिक कार्य कर सकते हैं। जब तक संसार का अस्तित्व है, आदि शंकराचार्य का नाम विस्मृत नहीं किया जा सकता है। ये रामकृष्ण परमहंस देव, स्वामी रामतीर्थ, स्वामी दयानन्द एवं स्वामी विवेकानन्द ही थे जिन्होंने शास्त्रों के दिव्य सदुपदेशों का व्यापक प्रचार-प्रसार किया तथा हिन्दू धर्म का संरक्षण किया। केवल एक संन्यासी ही वास्तविक लोककल्याण कर सकता है क्योंकि वह दिव्य ज्ञान से सम्पन्न है तथा उसके पास पर्याप्त समय है। एक सच्चा संन्यासी सम्पूर्ण विश्व की नियति को बदल सकता है। दिव्य ज्ञान के भण्डार, परम सत्य के पथप्रदर्शक, विश्व के प्रकाशस्तम्भ, आध्यात्मिक भवन की आधारशिला तथा शाश्वत धर्म के आधारस्तम्भ संन्यासी जन विश्व के विभिन्न राष्ट्रों का मार्गदर्शन करें।

(अनुवादिका : स्वामी गुरुवत्सलानन्द माता जी)

संन्यास की महिमा

परम पावन श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज

१ जून सर्वाधिक पावन एवं शुभ दिवस है। इस दिन हमें भारतवर्ष के उस सर्वोच्च आदर्श का स्मरण करना चाहिए जिसका वह प्राचीन औपनिषदिक युग से वर्तमान आणविक युग तक प्रतिनिधित्व करता रहा है। यह संन्यास का आदर्श है, यह पूर्ण वैराग्य, त्याग, विशुद्ध प्रेम तथा सम्पूर्ण जीवों में शाश्वत शिव तत्त्व के दर्शन करते हुए उनकी नि:स्वार्थ सेवा का आदर्श है। हम पिछले अनेक वर्षों से १ जून को श्री गुरुदेव के संन्यास दीक्षा दिवस के रूप में मनाते आ रहे हैं जो हमारे लिए परिपूर्ण गौरव-गरिमायुक्त संन्यास के सर्वाधिक महान् एवं आदर्श उदाहरण हैं। यह हमारा परम सौभाग्य है कि हम श्री गुरुदेव के संन्यास दीक्षा उत्सव का प्रारम्भ प्राचीन काल एवं वर्तमान काल के उन महान् सद्गुरुओं एवं संन्यासियों से आशीर्वाद-याचना के साथ करते हैं जिन्होंने इस भव्य परम्परा को सुरक्षित बनाये रखा है। क्योंकि उनके आशीर्वाद के बल से तथा भारतवर्ष की उज्ज्वल संस्कृति के माध्यम से मानवता की दुर्भाग्यपूर्ण नियति से रक्षा की जा सकती है तथा धरा पर शान्ति एवं आनन्द की पुन: स्थापना की जा सकती है।

हमारे पूर्वजों द्वारा उद्घोषित संन्यास का वह सार तत्त्व क्या है जो हमें जीवन के महान् लक्ष्य 'आत्म-साक्षात्कार' प्राप्ति हेतु समर्थ बनायेगा? हमारे पूर्वजों, ऋषिमुनि जनों ने यह घोषणा की है, "**न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशु:**"—केवल परिपूर्ण त्याग तथा इच्छा-राहित्य द्वारा ही परम लक्ष्य की प्राप्ति की जा सकती है। त्याग ही संन्यास का प्राण है, सारतत्त्व है।

क्या यह त्याग बाहरी वस्तुओं को छोड़ने मात्र की नकारात्मक प्रक्रिया होना चाहिए अथवा यह एक प्रकार की साहसिक एवं सकारात्मक क्रिया होनी चाहिए? हमारे प्राचीन विधिवेत्ताओं द्वारा संन्यास को सामाजिक जीवन की चार अवस्थाओं में सर्वोच्च माना गया है। अन्य तीन अवस्थाएँ तो व्यक्ति को संन्यास हेतु तैयार करने वाली अवस्थाएँ मात्र हैं।

ब्रह्मचर्य आश्रम में व्यक्ति को मानव जीवन के वास्तविक लक्ष्य के विषय में ज्ञान प्रदान कर एक आधारशिला निर्मित की जाती है। इस आश्रम में उसे सिखाया जाता है कि धर्म एवं अधर्म क्या हैं, सत्य क्या है तथा आत्मसंयमपूर्ण जीवन किस प्रकार व्यतीत किया जाये जिससे कि वह संन्यास की दिशा में उत्तरोत्तर अग्रसर हो सके।

ब्रह्मचर्य आश्रम में ग्रहण किये गये समस्त महान् आदर्शों एवं शिक्षाओं का गृहस्थाश्रम में समुचित अभ्यास किया जाता है। एक गृहस्थ विविध आसक्तियों के मध्य अनासक्त रहने हेतु तथा संसार में रहते हुए संसार से नहीं बँधने हेतु स्वयं को प्रशिक्षित करने का प्रयास करता है। वह स्वार्थ रहित हो कर धनार्जन के लिए अथक प्रयत्नशील रहने का भी प्रयास करता है। वह मानसिक स्तर पर एक आदर्श संन्यासी का जीवन व्यतीत करने की कोशिश करता है। इस प्रकार द्वितीय आश्रम, प्रथम आश्रम में अर्जित ज्ञान के व्यावहारिक जीवन में अभ्यास की अवस्था है।

जब मनुष्य विकास की सीढ़ी पर एक और कदम आगे बढ़ाता है, तो हमारी यह आश्रम-व्यवस्था उसे तीसरे आश्रम 'वानप्रस्थ आश्रम' में प्रवेश का निर्देश देती है, जो लगभग संन्यास-आश्रम के समान ही है। इस वानप्रस्थ अवस्था में वह गृहस्थ जीवन के बाहरी पक्ष का पूर्णत: त्याग

'द डिवाइन लाइफ' पत्रिका २००७ में प्रकाशित आलेख का अनुवाद

कर देता है, परन्तु उसके भीतर कुछ समस्याएँ होती हैं जिनका समाधान करना अभी शेष है। जब एक गृहस्थ आत्मसंयम एवं वैराग्य से पूर्ण एक आदर्श जीवन व्यतीत करता है, तो उसके भीतर अहंकार एक घोर शत्रु के रूप में प्रकट होता है और वह मनुष्य सोचता है,''मैंने धर्म का आचरण किया है। मैं स्वार्थरहित हूँ। मैं नैतिक पूर्णता के उच्च स्तर को बनाए रखने का प्रयास कर रहा हूँ।'' जब वह एक वानप्रस्थ का जीवन प्रारम्भ करता है तो उसे इन सूक्ष्म आन्तरिक बाधाओं पर विजय प्राप्ति का प्रयास करना होता है। केवल तभी वह उस अन्तिम अवस्था 'संन्यास' हेतु स्वयं को योग्य बना पायेगा जहाँ बाहरी जीवन पूर्णत: समाप्त हो जाता है तथा वह गहन ध्यान में स्वयं को पूर्णत: लीन कर सकता है।

एक संन्यासी का धर्म गहन ध्यान में सतत संलग्न रहना है। यह भारतीय सामाजिक जीवन की सर्वश्रेष्ठ व्यवस्था है। यदि इस सामाजिक संरचना की अवहेलना करने के स्थान पर, इसमें वर्तमान समय के अनुकूल कुछ आवश्यक परिवर्तन करके इसे सुरक्षित रखा जाता, तो हमें ज्ञात होता कि भारतवर्ष का जीवन संन्यास से परिव्याप्त है। हिमालय से कन्याकुमारी, पूर्व से पश्चिम सम्पूर्ण भारतवर्ष में संन्यास का भाव परिलक्षित होता है।

मानव-इतिहास के प्रारम्भ में ही महर्षि मनु ने घोषित किया था कि मनुष्य जन्म का महान् उद्देश्य परोपकार है। महर्षि व्यास कहते हैं कि दूसरों को कष्ट देना, पीड़ा पहुँचाना पाप है तथा पाप का परिणाम भयंकर होता है। दूसरों की सहायता करना, उनके कष्ट दूर करना पुण्य है और पुण्य आनन्द प्रदान करता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारी सामाजिक व्यवस्था चार आश्रमों के आधार पर निर्मित की गयी थी, प्रत्येक आश्रम में मनुष्य की नि:स्वार्थता एवं आत्मार्पण की भावना अधिकाधिक विकसित होती जाती है, तथा अन्तत: संन्यास के महिमामय आश्रम में यह अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचती है।

हरि ॐ तत् सत्।

(अनुवादिका : स्वामी गुरुवत्सलानन्द माता जी)

अमर आत्मा में शाश्वत जीवन व्यतीत करने का नाम धर्म है। धर्म पूर्णत्व या साम्यता है। धर्म एकत्व है। धर्म मन और इन्द्रियों के परे है। धर्म आचार-विधियों और कर्मकाण्डों से भिन्न है। धर्म भगवान् के साथ एकरसता का नाम है। दिव्य चेतना या दिव्य ज्ञान की प्राप्ति का नाम धर्म है। अज्ञान, भ्रम, संशय, भय, दु:ख और मोह से मुक्ति ही धर्म है। सदाचार हेतु संघर्ष करने और आत्माभ्युदय के साथ श्रेय या मोक्ष की ओर ले जाने वाले प्राचीन धर्मों की स्थापना के लिए आध्यात्मिक क्षेत्र में कुछ कार्य करने की प्रेरणा ही धर्म है।

धर्म वह आस्था या श्रद्धा है जो भगवान् को जानने और उसकी उपासना के लिए प्रेरित करे। वह चर्चा-गोष्ठियों में वाद-विवाद करने का विषय नहीं है। वह तो वास्तविक आत्मा का ज्ञान है, मनुष्य के अन्दर निहित शाश्वत जिज्ञासा की पूर्ति है।

इसलिए धर्म को जीवन का उच्चतम मूल्य मानना चाहिए। अपने जीवन का प्रत्येक क्षण उसी की अनुभूति के लिए होना चाहिए। जिस जीवन में धर्म की साधना नहीं है, वह जीवन जीवन नहीं, वस्तुत: मृत्यु है।

धर्म एक है। सच्चा धर्म व्यावहारिक है। सच्चा धर्म वह आध्यात्मिक जीवन है जो सभी वासनाओं से परे है। सच्चा धर्म आत्मानुभूति है। ईश्वर का अनुभव, ईश्वर का दर्शन और ईश्वर के साथ सम्भाषण ही सच्चा धर्म है।

स्वामी शिवानन्द

यजुर्वेद में शतरुद्री

परम पावन श्री स्वामी कृष्णानन्द जी महाराज

हम महाशिवरात्रि का दिवस तथा रात्रि उन परमात्मा के सम्मान में मनाते हैं जिनकी महानता, ऐश्वर्य तथा यश, विशेषकर रुद्राध्याय अथवा वेद में शतरुद्री में आनन्दातिरेक की अवस्था में वर्णित किया गया है। प्रत्येक शिव-मन्दिर में भगवान् शिव का इन शतरुद्री मन्त्रों, यजुर्वेद में रुद्राध्याय कहलाये जाने वाले वेदमन्त्रों द्वारा अर्चना तथा अभिषेक किया जाता है।

यह कहना उचित होगा कि शतरुद्री के ये अद्भुत वेद-मन्त्र आध्यात्मिक ऊर्जा का महान् स्रोत हैं, जिनकी महत्ता तथा अर्थ पर मनन व्यक्ति को अत्यधिक अचम्भित कर देगा। परमात्मा द्वारा जिन ऋषि को ये मन्त्र प्राप्त हुए, उनके भाव तथा इन मन्त्रों के आविर्भाव की गहनता को पूर्णरूपेण ग्रहण कर पाना दुष्कर है। आध्यात्मिक साहित्य में ऐसी रचनाएँ, प्रार्थनाएँ एवं स्तुतियाँ बहुत कम हैं जो शतरुद्रीय की तुलना में हों, जिनमें भगवान् के स्वरूप को आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि की भाषा में मानवीय रूप में दर्शाया गया हो। प्राय: ऐसा देखा गया है कि इसके बृहत् दृष्टिकोण तथा इसमें निहित अनुभव की गम्भीरता के कारण मनुष्य इनके तात्पर्य को समझ नहीं पाता है।

यदि कोई इन शतरुद्रीय मन्त्रों में निहित आन्तरिक सम्बन्धों तथा भावों को समझते हुए श्रद्धासहित इनका उच्चारण करता है, तो वह तत्क्षण पाप-मुक्त हुए बिना नहीं रह सकता अर्थात् उसके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं । ये मन्त्र किसी विशेष भगवान् की स्तुति नहीं है। 'शतरुद्रीय' के अनेक तात्पर्य हैं—शतसहस्र रुद्रों की अथवा शतसहस्र रूपों में प्रकट रुद्र की स्तुति, जो शिव ही हैं। **'रुद्र यत्ते दक्षिणं मुखं तेन मां पाहि नित्यम्'** (श्वेताश्वतरोपनिषद् ४.२१) इस स्तुति का प्रायः उल्लेख किया जाता है। जहाँ एक ओर भगवद्-शक्ति मनुष्य के लिए भयकारक है, वहीं दूसरी ओर यह सदा कल्याणकारी आशीष भी है। इसीलिए, महादेव को प्राय: रुद्र शिव भी कहा जाता है जो स्वयं में समस्त पदार्थों की सृष्टि, पालन तथा विनाश के पक्ष सदा सम्मिश्रित किये हैं।

जिसने इन शतरुद्रीय मन्त्रों का उच्चारण किया हो, वह अनुभव कर सकता है कि जिन ऋषि के समक्ष ये प्रकट हुए होंगे, जिन्हें इनके दर्शन प्राप्त हुए होंगे, उन्हें अपने व्यक्तित्व का बोध न रह कर असीम दिव्य आनन्द की अनुभूति हुई होगी। जो इन मन्त्रों का उच्चारण आत्मा से करता है, वह असीम आनन्द की उस शक्ति से वंचित नहीं रह सकता है, जहाँ शरीर, मन तथा आत्मा एक हो जाते हैं तथा 'दिशारहित' सर्वव्यापक परमात्मा की ओर अग्रसर होने पर विवश हो जाते हैं।

भक्त-जन आज जिस **नम: शिवाय** मन्त्र का प्रात:काल से जप कर रहे हैं, वह अत्यन्त रहस्यमय ढंग से वेद के शतरुद्री के मध्य में आता है। वेद-संहिता में सामान्यतया स्वीकृत मन्त्र अत्यन्त कम हैं, परन्तु यह संहिता के मध्य भाग में वर्णित है। '**नम: शंकराय च मयस्कराय च नम: शिवाय च शिवतराय च**' वह वाक्य है जिसमें **नम: शिवाय** मन्त्र का वर्णन आता है।

आज प्रात:काल किसी ने मुझसे प्रश्न किया, ''यह कौन-सा मन्त्र है? ऋषि कौन हैं? ये छन्द क्या हैं तथा देवता कौन हैं?'' मैंने बताया कि यह मन्त्र शक्ति-स्रोत है। यह एक गुप्त शक्ति है जो विभिन्न घटकों से उद्धृत

क्षमता द्वारा अभियुक्त है जो इस मन्त्र को महत्ता प्रदान करती है। इस मन्त्र में मात्र सूत्र दर्शाने हेतु एक-दूसरे के निकट रखे गये अक्षर नहीं हैं, जिस प्रकार भाषा का तात्पर्य मात्र अक्षर अथवा अक्षर-समुदाय नहीं है, अपितु एक गुप्त संश्लेषणात्मक शक्ति है जो अक्षरों के सम्मिश्रण के मध्य निहित है जो उसके तात्पर्य को प्रकट करती है।

अत: ध्वनि-चिह्न के रूप में मन्त्र उन अनेक तत्त्वों का मिश्रण है जो अभिन्न होने के लिए, मानो भ्रात्रीय आलिंगन में लुप्त हो जाते हैं । इसे समझने के लिए एक लौकिक उदाहरण लें—जब हम चाय पीते हैं, उसमें मात्र दूध, चीनी तथा चायपत्ती का स्वाद नहीं होता है, अपितु काढ़े के रूप में एक मिश्रण होता है। अथवा दूसरा उदाहरण लें, जब हम किसी स्वादिष्ट व्यञ्जन का सेवन करते हैं, तब हम केवल नमक तथा अन्य सामग्री का स्वाद नहीं लेते जो उस व्यञ्जन में हैं। यह मिश्रण के रूप में पूर्णतया एक नवीन तत्त्व होता है। यही चिकित्सीय औषधियों में होता है, जहाँ कुछ घटक अपना व्यक्तित्व खो कर एक महत्त्वपूर्ण नवीन रूप में प्रवेश करते हैं, जो उस सामग्री का संश्लेषणात्मक-रूप होता है। अत:, भाषा का लालित्य, अभिव्यक्ति की शैली तथा साहित्य का महत्त्व वे तत्त्व हैं जो अदृश्य रूप में किसी भी भाषा के दृश्य-रूप अर्थात् उसकी वर्णमाला में व्याप्त हैं।

मन्त्र के छन्दों का यही तात्पर्य है। छन्द मन्त्र के अक्षरों को एकत्रित करने का माध्यम हैं जिसके द्वारा वे ऊर्जा को एकत्रित करते हैं तथा मात्र अक्षर-रूप में नहीं रहते हें; वे मन्त्र के भँवर में स्वयं को लीन कर देते हैं। अलंकार-शास्त्र में, जो संस्कृत भाषा की अलंकार-विद्या पर आधारित है, गणों का वर्णन है। आधुनिक समय में यह विद्या लुप्त हो गयी है । प्रत्येक अक्षर में गण नामक शक्ति निहित है जो किसी विशेष स्थिति में अपना महत्त्व दर्शाती है। यदि किसी श्लोक, मन्त्र अथवा प्रार्थना का यथोचित महत्त्व अथवा तात्पर्य दर्शाना है, तो कोई विशेष अक्षर आरम्भ में, कोई विशेष अक्षर मध्य में आना चाहिए। मन्त्र ध्वनियों का अव्यवस्थित उच्चारण नहीं है, यह वैज्ञानिक रूप में नादात्मक प्रणाली है। मन्त्र के छन्दों के बारे में यही कहा जा सकता है, चाहे वे वैदिक हों अथवा तान्त्रिक।

मन्त्र का ऋषि, अथवा, हम कह सकते हैं, रचयिता भी होता है। हम जानते हैं कि पुस्तक द्वारा सम्प्रेषित तात्पर्य में लेखक के मन की क्या भूमिका होती है। लेखक का मन स्वरचित सम्पूर्ण पुस्तक को व्याप्त करता है। लेखक के विचारों का बल उसके द्वारा रचित सम्पूर्ण पुस्तक में प्रथम पृष्ठ से ले कर अन्तिम पृष्ठ तक प्रदर्शित होता है। जब हम किसी प्रभावशाली पुस्तक का अध्ययन करते हैं, हम मात्र अक्षर नहीं देखते हैं। हम विचारों की शक्ति के उस सागर में प्रवेश करते हैं, जो पुस्तक के पृष्ठों पर प्रदर्शित अक्षर-चिह्नों द्वारा प्रकट होता है। यही भूमिका उन ऋषि द्वारा निभायी जाती है जिनके समक्ष ध्यान में यह मन्त्र प्रकट होता है। हम यह नहीं कहते कि मन्त्र रचित किया जाता है। परम्परानुसार, वेद लिखित पुस्तकें नहीं हैं। वेदों के रचयिता अज्ञात हैं। यह अवधारणा है कि ये मन्त्र ब्रह्माण्डीय आकाश में सदा व्याप्त अनन्त ध्वनि-चिह्न हैं, जो प्रलय के समय भी नष्ट नहीं होते हैं। अत: वेदों के ज्ञान का नाश होने का प्रश्न नहीं है, क्योंकि वेद मात्र पुस्तकों से कुछ भिन्न हैं। भाव यह है कि सूक्ष्म आकाशीय तन्मात्राएँ, जो श्रवण हेतु ध्वनि-चिह्नों में परिवर्तित होती हैं, नष्ट नहीं होती हैं। वे अन्तत: विचारों के कुछ प्रकार हैं जो बाह्य ध्वनि-चिह्नों का रूप धारण करते हैं तथा ताल-पत्रों अथवा पृष्ठ पर लिखित अक्षरों में परिवर्तित होते हैं।

अन्तत:, स्पन्दन का ही अस्तित्व है, तथा ठोस वस्तु नहीं है। वेद ठोस वस्तु नहीं है; वह प्रदर्शित पदार्थ

नहीं है; वेद पुस्तक नहीं है। वह अलौकिक ऊर्जा-चिह्न है जो शक्ति-रूप में व्याप्त होता है जो निश्चित समय पर प्रकट होने के लिए आकार धारण करता है। आधुनिक विज्ञान तथा आधुनिक दार्शनिक, आधुनिक विज्ञान के आधार पर इस महान् सत्य को लगभग अपना चुके हैं जो भारत के 'स्फोटवाद' (ध्वनि-सिद्धान्त) नामक मूल विज्ञान में वर्णित है। भर्तृहरि ने प्राचीन संस्कृत व्याकरण पर 'वाक्यपदीय' नामक एक महान् पुस्तक लिखी जो 'स्फोट' के महत्त्व को गहनतापूर्वक परिलक्षित करती है। इसका उल्लेख आचार्य शंकर तथा अन्य आचार्यों ने ब्रह्म-सूत्र पर अपनी व्याख्या में किया है। यद्यपि, तथ्य यह है कि मन्त्र अतीन्द्रिय शक्ति तथा गुप्त ऊर्जा है जो ध्यान करने वाले के मन के सम्पर्क में लायी जाती है।

हमें यह भी बताया गया है कि मन्त्र ऋषि के समक्ष प्रकट होता है। ऋषि का स्मरण हमें उनका आशीष प्रदान करता है। जब हम मन्त्रोच्चारण करते हैं, हमें उन महान् विभूति का स्मरण करना चाहिए जिनके समक्ष मन्त्र प्रकट हुआ। उदाहरण के लिए हम स्वामी शिवानन्द जी की भगवद्गीता का उल्लेख करते हैं, तो 'शिवानन्द' नाम ही हमें विशेष रूप में रोमांचित करता है। श्री अरविन्द का 'लाइफ़ डिवाइन' अकस्मात् हमारे उन भावों को जाग्रत करता है, जिनका श्री अरविन्द के साथ सम्बन्ध है। ऐसा ही रमण महर्षि के साथ है। जिस पल हम उन लेखकों अथवा व्यक्तियों का नाम श्रवण करते हैं जिनके समक्ष मन्त्र प्रकट हुए, हम तत्काल आध्यात्मिक भाव से ओत-प्रोत हो जाते हैं। अत:, मन्त्र का उच्चारण अथवा जप करते समय ऋषि का स्मरण करने में गहन तत्त्व है।

मैं छन्दों के विषय में चर्चा कर चुका हूँ। मन्त्र के घटक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। संस्कृत की अलंकार विद्या में गण-शास्त्रों का विवरण दे चुका हूँ। इन्हें समझाना अत्यन्त कठिन है। गण-शास्त्र के विज्ञान के अनुसार ऋषि के अन्तर्ज्ञान की शक्ति द्वारा मन्त्र के अक्षर एक विशेष क्रम धारण करते हैं। वे गणित के अनुसार रचित नहीं होते।

इन सबसे ऊपर मन्त्र का देवता होता है जो मन्त्र की ध्वनि में निहित होता है। जिस प्रकार आत्मा इस शरीर में निहित है, जिस प्रकार चित्र में कलाकार का भाव निहित होता है, भवन में वास्तुकार का विचार निहित होता है, उसी प्रकार देवता की इच्छा, देवता की शक्ति तथा स्वरूप, उनके मन्त्रोच्चार के समय साक्षात् परिलक्षित होते हैं, ऐसा कहा गया है। प्रयोग किये गये हैं, तथा ऐसा पाया गया है कि जब मन्त्र का आत्मा की गहराई से उच्चारण किया जाता है, वह विद्युत्-चुम्बकीय तरंगों को इस गतिशीलता से उत्पन्न करता है कि ये तरंगें जप करने वाले साधक के समक्ष बिखरे रेत के कणों को फैला कर इष्टदेवता अथवा मन्त्र-देवता के रूप में परिवर्तित कर सकती हैं।

अत:, जिस महान् मन्त्र '**नम: शिवाय**' का जप हम आज प्रात:काल से रात्रिकालीन पूजा तक कर रहे हैं, साधारण जप नहीं है। कोई भी मन्त्र साधारण नहीं होता; वह पावन होता है। उसका जप कुछ खाने के उपरान्त, बिना कुल्ला किये इत्यादि अस्वच्छ मुख से नहीं करना चाहिए। हमें मन्त्र का उच्चारण भक्ति एवं श्रद्धापूर्वक तथा आकांक्षा की पवित्रता के साथ करना चाहिए, मानो हम स्वयं परमात्मा के समक्ष हों।

रुद्राध्याय का, जिसका मैंने पूर्व में उल्लेख किया, इस पावन शिवरात्रि के अवसर पर पूजा के समय अनेक बार उच्चारण किया जायेगा। परन्तु आपमें से अनेक लोग नहीं समझ पायेंगे कि वे क्या उच्चारण कर रहे हैं। आपको मात्र कुछ ध्वनि व जप सुनायी देगा; बस। यह ध्वनि, ध्वनि नहीं है। यह उन ऋषि की आत्मा की अभिव्यक्ति है जब मन्त्र उनके समक्ष प्रकट हुआ।

रुद्राध्याय अत्यन्त पावनकारी है। वैदिक संहिताओं के मन्त्रों में दो या तीन ऐसे सन्दर्भ हैं, जहाँ आनन्दातिरेक की अनुभूति को व्यक्त किया गया है। पुरुष-सूक्त इनमें से एक है। ऐसे सन्दर्भ सभी संहिताओं—ऋग्वेद, सामवेद, अथर्ववेद में हैं, जहाँ परमात्मा की अचिन्तनीयता, सर्वव्यापकता तथा शक्ति का प्रभावपूर्ण ढंग से वर्णन किया गया है तथा मैं कह सकता हूँ कि शतरुद्रीय और भी अधिक प्रभावशाली है। यदि हमें ज्ञात हो जाये कि हमारे समक्ष क्या वर्णन हो रहा है, तो हम आनन्दानुभूति में नृत्य करने लग जायेंगे। समस्त मंगलकारी स्तुतियों को नमन! जो भी हम देख सकते हैं, सुन सकते हैं, छू सकते हैं, सोच सकते हैं, अनुभव कर सकते हैं तथा समझ सकते हैं, वह दिव्य है। भगवान् ने स्वयं को इस अबोधगम्य सृष्टि की विविधता में प्रकट किया है, जो आधुनिक मस्तिष्क की सर्वोच्च तर्क-शक्ति को भी विस्मित कर देता है। विशेषकर, शतरुद्रीय मन्त्र का जप कोई साधारण जप नहीं है। यह मन्त्र द्वारा हमारे समक्ष प्रदर्शित विस्तृत दृष्टिकोण के सागर की गहराई में प्रविष्ट होने के समान है।

शतरुद्री के दो खण्ड है—'नमक' तथा 'चमक'। 'नमक' में, जो पूर्व खण्ड है, 'नमः' अनेक बार आता है—नमः, नमः, नमः; प्रणाम, प्रणाम, प्रणाम; आत्मसमर्पण, आत्मसमर्पण, आत्मसमर्पण! यह 'नमः' असीम रूप में व्यक्त हुआ है। उसके उपरान्त 'चमक' आता है : 'च मे', 'च मे', 'च मे'। ''सब कुछ मुझे प्राप्त हो'', ''सब कुछ मेरा है।'' यहाँ ऐसा कुछ नहीं है जो हमारा नहीं है। ''सब कुछ मुझे प्राप्त हो।'' सब कुछ हमें प्राप्त होना है, जैसे वह स्वयं भगवान् को प्राप्त हुआ है।

गीता के एक श्लोक में ''**आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्। तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी।।**'' (भगवद्गीता २.७०) ''जिस प्रकार नदियाँ समुद्र में प्रवेश करती हैं, सब कुछ आपमें प्रवेश करता है।'' हमें स्वयं को इस संसार में दीन, दरिद्र नहीं दर्शाना चाहिए, जैसे हमारे पास कुछ न हो, मित्र न हो, जैसे हम असहाय तथा परित्यक्त हों। हमारे पास सब कुछ है। इच्छा प्रकट होने पर सब कुछ हमारे पास आयेगा।

विचार की अभिपुष्टि होते ही उस बृहत् सामग्री को फलित होना होगा—ऐसा तभी सम्भव होगा जब हमारे विचार परमात्मा की इच्छा के साथ एक होंगे। अतः, सब कुछ हमारे पास आयेगा। यदि सब कुछ भगवान् के पास जायेगा, तो वह हमारे पास क्यों नहीं आ सकता? हम '**अमृतस्य पुत्रः**', शाश्वत-सत्ता की सन्तान हैं। हम परमात्मा के अनन्त भण्डार के प्रत्यक्ष उत्तराधिकारी हैं।

अतः, 'चमक' खण्ड भगवान् की सर्वव्यापकता की ओर दिव्य अन्तर्दृष्टि के माध्यम से प्रत्येक वस्तु का हमारे भीतर आह्वान करता है। सर्वप्रथम, हम आत्मसमर्पण द्वारा भगवान् की सत्ता से एकाकार होते हैं, तथा तब सब कुछ हममें इस प्रकार प्रविष्ट होता है जैसे नदियाँ समुद्र में प्रविष्ट होती हैं। अद्भुत! अनेक बार, मैं इन शतरुद्री मन्त्रों के स्मरण-मात्र से ही अकथनीय रूप में रोमांचित हो उठता हूँ। तथा, इसीलिए, इस पावन अवसर पर, मैं आपसे हमारे पूर्वजों द्वारा प्रदान की गयी इस धरोहर, इस निधि पर कुछ विचार करने का आग्रह करता हूँ जिसे हम आधुनिक सुख-सुविधाओं तथा अन्य विक्षेपपूर्ण गतिविधियों में अनदेखा कर सकते हैं। वेद संहिताएँ समस्त बल, समस्त शक्ति एवं अर्थवत्ता का भण्डार हैं।

जैसा मैंने कहा, ऐसे कुछ सन्दर्भ हैं, जब इस प्रकार की आनन्दानुभूति वेद-मन्त्रों द्वारा परिलक्षित हुई है। इनमें से

एक पुरुष-सूक्त है; तथा दूसरा शतरुद्री है जो यजुर्वेद की तैत्तिरीय संहिता में है तथा शुक्ल यजुर्वेद में भी है। ऋग्वेद के आरम्भ में सूर्य-देव की महिमा के सन्दर्भ में सृष्टि के आरम्भ का वर्णन वाले सूक्त में भी ऐसे अद्भुत भाव प्रदर्शित होते हैं। यहीं वह प्रसिद्ध मन्त्र आता है जिसका उल्लेख प्राय: किया जाता है—''**एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति**'' (ऋग्वेद १.१६४.१४६)। कवि-जन एक परम सत्ता का विविध रूप से गान करते हैं।'' अथर्ववेद में 'स्कम्भ-सूक्त' है जो सभी को ज्ञात नहीं है। यह लगभग 'पुरुष-सूक्त' की भाँति है जिसमें ऋषि, जिनके समक्ष मन्त्र प्रकट हुआ, सृष्टि रूपी इस चमत्कार पर विचार करते हैं, तथा स्वयं से प्रश्न करते हैं : ''वह कौन-सा पदार्थ है जिससे इस ब्रह्माण्ड का भव्य दुर्ग निर्मित हुआ? वे शिल्पकार कौन हैं? इस ब्रह्माण्ड के निर्माण हेतु कौन-सी लकड़ी का प्रयोग किया गया? कौन-सी ईंटों का प्रयोग किया गया?'' इत्यादि। ऋग्वेद में अन्य सूक्त भी हैं, जैसे 'हिरण्यगर्भ सूक्त' तथा 'विश्वकर्मा सूक्त'।

हमें महारुद्र शिव की कृपा तथा आशीष प्राप्त हो, जिनका पूजन आज हम कर रहे हैं। वे हमें बुद्धि प्रदान करें—''**धियो यो न: प्रचोदयात्**'' (ऋग्वेद ३.६२.१०)। हम भगवान् से बुद्धि, ज्ञान, विवेक तथा अन्तर्दृष्टि के अतिरिक्त कुछ नहीं माँगते हैं। हमें भौतिक सुख अथवा सांसारिक पदार्थ नहीं चाहिए। किसी भी पदार्थ की प्राप्ति व्यर्थ है। हमें कुछ 'बनना' है। हमारे पास 'क्या' है, यह महत्त्वपूर्ण नहीं है; हम 'क्या हैं', यह महत्त्वपूर्ण है। स्वामी शिवानन्द जी महाराज का एक महान् कथन है, ''तुम्हारे पास जो है, उससे सन्तुष्ट रहो, परन्तु तुम जो हो, उससे असन्तुष्ट रहो।'' परन्तु हम इसके विपरीत हैं। हम जो हैं, उससे सन्तुष्ट रहते हैं, तथा जो हमारे पास है, उससे असन्तुष्ट रहते हैं। हम सदा हमें उपलब्ध पदार्थों तथा सामान से असन्तुष्ट रहते हैं, तथा स्वयं से, अपने अहंवादी व्यक्तित्व से सदैव सन्तुष्ट रहते हैं।

सत्य यह है कि हमें प्रत्येक उस परिस्थिति में सन्तुष्ट रहना है जिसमें हमें भगवान् ने रखा है, परन्तु अपने अन्दर की उपलब्धियों से सदैव असन्तुष्ट रहना है। जैसा कि उपनिषद् कहता है, '**नेति नेति**'—''यह पर्याप्त नहीं है; 'यह नहीं, यह नहीं'—यही सत्य है।'' इस प्रयोजन हेतु हमारी कोई भी उपलब्धि अन्तत: पर्याप्त नहीं है। आत्मा को जो भी अर्पण किया जाये, वह उससे सन्तुष्ट नहीं होगी। हमारी आत्मा अनन्त शक्तियों का भण्डार है। यह मात्र भगवद्-सत्ता के प्रति अनुकूल है। अत:, हमारे अन्दर जो असीम-अनन्त है, वह किसी भी सीमित वस्तु के अर्पण से सन्तुष्ट नहीं हो सकता है। कुछ तुच्छ पदार्थ तथा खिलौने हमें कभी-कभी सन्तोष प्रदान करते प्रतीत होते हैं; घड़ी, रेडियो, कोई ध्वनि, रंग तथा कोई गतिविधि हमें सन्तोष प्रदान करती प्रतीत हो सकती है। हम इस संसार में अज्ञान के अन्धकार में भटकते अबोध बालक हैं। अत:, हमें सर्वशक्तिमान् प्रभु से ज्ञान एवं प्रबोधन का आशीर्वाद माँगना है, हमें परमात्मा से स्वयं उन्हीं को माँगना है।

हम अपनी समस्त शक्तियाँ एकत्रित करें, तथा परमात्मा के प्रति भक्ति को केन्द्रित करके ध्यान लगायें जिनकी महिमा का श्रेष्ठ वेद-मन्त्रों में गान किया गया है, जिससे हम इस आध्यात्मिक तपस्या की अग्नि में प्रज्वलित हों। भगवान् शिव की कृपा हम सब पर हो!

(अनुवादिका : मेधा सचदेव)

जीवन्त उपनिषद्

परम पूज्य श्री स्वामी वेंकटेशानन्द जी महाराज

स्वामी कृष्णानन्द जी महाराज ने अपने जीवन का अधिकांश काल आश्रम में व्यतीत किया है। एक-दो वर्षों तक हम सब उन्हें 'सुब्बाराव जी' के नाम से पुकारते रहे। वे हमारे सत्संग के प्रबन्धक थे। कुछ समय तक वे ही अकेले थे जो सत्संग में समापन-प्रार्थना किया करते थे। यदि किसी कारणवश वे सत्संग में पूरा समय न दे पाते, तो स्वामी शिवानन्द जी महाराज आरती के समय उन्हें बुलवा भेजते और सत्संग का समापन करवाने के लिए उनकी प्रतीक्षा करते रहते। स्वामी जी ने हमें उपनिषदों का ज्ञान दिया; क्योंकि वे स्वयं ही उपनिषदों के मूर्त-स्वरूप थे।

सन् १९४६ में वे स्वामी कृष्णानन्द के नाम से प्रख्यात हुए। पूर्वाश्रम का नाम पीछे छूट गया। अन्य जो-कुछ भी अनावश्यक था, वह सब भी छूट गया। यह एक असाधारण बात थी, जिसका अनुभव हम सबने किया। सत् ही यथार्थ है। उसका त्याग नहीं किया जा सकता। जो असत् है, उसकी सत्ता ही नहीं होती; अत: उसे त्यागने का प्रश्न नहीं उठता। माया अज्ञानी जनों के लिए है, स्वामी कृष्णानन्द जी महाराज के लिए नहीं।

उनके भौतिक शरीर की निर्बलता तथा उसके रोगों ने स्वामी जी को कभी उद्विग्न नहीं किया। कभी तो वे हँस कर इसे टाल देते हैं और कभी इसकी गम्भीर व्याख्या करते हैं; किन्तु शरीर और उसकी दशा से उन्होंने कभी तादात्म्य स्थापित नहीं किया। ये दोनों वस्तुएँ उनके लिए किसी 'अन्य' की भाँति रही हैं।

बहुत समय पूर्व उन्होंने दिव्य जीवन संघ के महामन्त्री के पद का भार सँभाला। पूज्य गुरुदेव ने स्वामी जी को एक ही समय में विभिन्न प्रकार के अनेक कार्य सौंप दिये। उनके उत्तरदायित्वों का बाह्य मिश्रित रूप अतीव अद्भुत था। वे पत्रिका विभाग के मैनेजर थे। वे हमारे पण्डित भी थे तथा आश्रम में आयोजित किये जाने वाले सभी कर्मकाण्डों तथा अनुष्ठानों को सम्पन्न करवाते थे। वे हमारे वेदान्त के शिक्षक थे। आश्रम की डिस्पेंसरी में वे परिचारक और औषधि-वितरक थे। इसके अतिरिक्त वे शैक्षिक परिहास तथा विनोदपूर्ण प्रज्ञा के धनी एक महान् मित्र भी थे। आज भी आप उनके विनोदपूर्ण स्वभाव का रसास्वादन कर सकते हैं। अब भी उनका दमकता चेहरा जब अट्टहास करता है, तो ऐसा प्रतीत होता है कि वह अट्टहास हमारे हृदय की गहराई में पहुँच कर गूँज रहा है और हम हल्के होते जा रहे हैं; हमें प्रबोधन प्राप्त हो रहा है।

एक सुबह स्वामी जी आश्रम छोड़ कर चले गये। कदाचित् अपने रुग्ण शरीर के कारण अथवा हमें सौभाग्य प्रदान करने के लिए वे लौट आये। किन्तु स्वामी जी के आश्रम त्यागने और कुछ दिनों के उपरान्त पुन: लौटने के बीच की अवधि में उनमें बहुत अन्तर आ गया था। उन्हें एक अद्भुत आध्यात्मिक अनुभूति हुई थी। कैवल्य गुहा के ऊपरी कक्ष में उनके दर्शन करते हुए ऐसा प्रतीत होता था कि वे मानो शुकदेव अथवा जड़भरत के ही प्रकटीकरण हैं। पूज्य गुरुदेव ने हमें बताया—''उन्हें बहुत उच्च आध्यात्मिक अनुभूति हो चुकी है। सब उनकी सेवा करें। कोई उनके कार्य में बाधा न डाले।'' उन्होंने स्वामी जी को एक लम्बी अवधि तक एकान्तवास करने के लिए तथा एकान्तवास की समाप्ति पर योग-वेदान्त अरण्य अकादमी में वेदान्त के आचार्य के रूप में सेवा

परम पूज्य श्री स्वामी कृष्णानन्द जी महाराज का जन्म शताब्दी वर्ष

अर्पित करने के लिए प्रोत्साहित किया।

ऐसा प्रतीत होता है कि भविष्य में यह आध्यात्मिक अनुभव एक अन्य प्रकार की गहनता ले कर उनके व्यक्तित्व में प्रकट हुआ। परिणामस्वरूप स्वामी जी अस्थायी रूप से एकान्तवास करने के लिए बाध्य हो गये। कदाचित् उनका शारीरिक रोग इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि उनका भौतिक शरीर उस समय उनकी आध्यात्मिक शक्ति की प्रबलता को सहन नहीं कर पाता है, जब उस शक्ति के प्रकटीकरण के समय शरीर को प्रशासनिक उत्तरदायित्वों के कारण आवश्यकता से अधिक कार्य करना पड़ जाता है।

जब कभी अवसर प्राप्त होता, पूज्य गुरुदेव स्वामी जी की प्रशंसा किया करते थे। आश्रम का कोई भी महत्त्वपूर्ण उत्सव स्वामी कृष्णानन्द जी के प्रेरक प्रवचन के बिना पूर्ण नहीं माना जाता था। आश्रमवासी और आगन्तुक दोनों ही उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते थे। एक बार श्री रुक्मिणी देवी ने उनके प्रवचन से प्रभावित हो कर कहा था—''स्वामी कृष्णानन्द जी का मन इतना प्रबुद्ध है कि उनके पास प्रत्येक बात कहने के लिए समुचित शब्द होते हैं।'' यह स्वाभाविक ही है; क्योंकि परम तत्त्व उनके लिए असन्दिग्ध रूप से इतना अधिक यथार्थ है कि उनकी अभिव्यक्तियों में किसी प्रकार की अस्पष्टता के लिए स्थान नहीं रह जाता है।

शिवानन्दाश्रम-जैसे विशाल आश्रम की नियति का सूत्रधार बनना तथा उस-जैसी अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की संस्था के प्रशासनिक उत्तरदायित्वों को वहन करना सरल कार्य नहीं है। इससे भी अधिक कठिन है ऐसे स्वामी कृष्णानन्द जी का सभी के प्रेम तथा श्रद्धा का पात्र बनना। निश्चित ही इसका कारण यह है कि उनमें राग-द्वेष का सर्वथा अभाव है। वे उपनिषदों की देदीप्यमान तात्त्विकता हैं। नैतिक तथा तात्त्विक, दोनों ही दृष्टियों से उनमें लेशमात्र भी असत्य नहीं है। वे यथार्थता ही हैं और यथार्थता की शाश्वतता कभी खण्डित नहीं होती है।

(अनुवादिका : मेधा सचदेव)

आत्मभावपूर्वक मानवता की नि:स्वार्थ सेवा ही चित्त-शुद्धि का साधन और परम सत्य के साक्षात्कार का एकमात्र मार्ग है। उस सेवा का माध्यम कुछ भी हो सकता है जैसे—सार्वजनिक और सामाजिक संस्थाओं को दान देना, गरीबों को भोजन और नग्नों को वस्त्र देना, अभावग्रस्तों के प्रति संवेदना प्रकट करना, रोगियों की सेवा करना, पतितों को सहारा देना, पीड़ितों की सहायता करना, अज्ञानियों को उनसे कुछ भी प्रतिफल की अपेक्षा न रखते हुए ज्ञान देना, गरीब विद्यार्थियों को बिना किसी प्रत्याशा के पढ़ाना और यह समझना कि जो-कुछ हम कर रहे हैं, वह सब उस भगवान् की ही योजना है और हम उसके हाथ के साधन हैं, निमित्त मात्र हैं। यही निष्काम कर्मयोग है।

वैद्य गरीब रोगियों का उपचार सही मनोभाव से करे, तो उसका चित्त शीघ्र शुद्ध होगा। उसके लिए अपना चित्त शुद्ध करने का बहुत स्रोत खुला हुआ है। वैद्य यदि कर्मयोगी बने, तो वह बड़ी सरलता से भगवत्साक्षात्कार कर सकता है। जिस किसी की भी वह सेवा करे, तो यही समझे कि मैं साक्षात् भगवान् की सेवा कर रहा हूँ।

स्वामी शिवानन्द

तिरेसठ नयनार सन्त :

मुरुग नयनार

परम पावन श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज

शिव आगमों के द्वारा बतायी गयी विधि के अनुसार भगवान् की पुष्पार्चना करना, भगवान् को फूल माला समर्पित करना और पञ्चाक्षरी मन्त्र का जप करना, इसे भगवान् की आदर्श भक्ति माना गया है। पञ्चाक्षर मन्त्र को अति श्रेष्ठ मन्त्र माना जाता है क्योंकि यह श्री रुद्राध्यायी के मध्य में, उसके केन्द्र में आता है और रुद्राध्यायी यजुर्वेद के मध्य खण्ड के मध्य में आती है। जो व्यक्ति इस मन्त्र का जप करता है, वह तत्काल जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त हो जाता है।

मुरुग नयनार इस प्रकार की भक्ति में अग्रगण्य थे। उनका जन्मस्थान तिरुपुकलूर, अन्य नयनार भक्तों के कारण भी सुप्रसिद्ध था। वह नित्य सूर्योदय से बहुत पहले ही उठ जाते, स्नान करते, मस्तक पर पावन भस्म धारण करते, अपने नित्य कर्म करते और फिर डलिया ले कर उपवन में चले जाते। पञ्चाक्षरी का जप करते हुए वह पुष्प एकत्रित करते और शिवागमों में वर्णित पूजा के अनुसार विविध रंगों के पुष्पों से माला गूँथ कर भगवान् को समर्पित किया करते।

एक दिन महान् भक्त ज्ञान सम्बन्धर वहाँ आये। मुरुग नयनार ने उन्हें आमन्त्रित किया और उनकी पूजा की जिससे वे प्रसन्न हो गये और मुरुग उनके प्रिय बन गये। सम्बन्धर ने उन्हें अपना घनिष्ठ मित्र मान लिया। मुरुग को सम्बन्धर के उस शुभ विवाह में सम्मिलित होने का महान् सौभाग्य प्राप्त हुआ जिसमें वे, दुल्हन तथा अन्य सभी (मुरुग नयनार भी) भगवान् के दिव्य निःस्राव में निमज्जित हो गये थे। इसीलिए कुरुल का कथन है : ''सर्वाधिक दुर्लभ है महान् व्यक्ति को प्रसन्न करके, उनकी प्रशंसा एवं स्नेह प्राप्त करना।'' मुरुग नयनार ने अपनी भक्ति से सम्बन्धर का हृदय जीत लिया और उसके माध्यम से ईश्वर-साक्षात्कार प्राप्त कर लिया।

रुद्र पशुपति नयनार

यजुर्वेद में सात ऐसे खण्ड हैं जिन्हें भगवान् का शीश माना जाता है। श्री रुद्र यजुर्वेद के मध्य खण्ड के मध्य स्थान अर्थात् केन्द्र स्थान में आता है। इसका पारायण महान् शुद्धिकारक है। इसमें भगवान् के अद्भुत अवतरणों का वर्णन किया गया है। नदी के जल में खड़े हो कर इस पावन ग्रन्थ का पाठ करना विशेष रूप से अत्यधिक प्रभावशाली माना जाता है। यह भक्त को मोक्ष प्रदान कर देता है।

रुद्र पशुपति नयनार भगवान् शिव के महान् भक्त थे और उन्होंने इस प्रकार की साधना की थी। वह नदी में गरदन तक गहरे जल में खड़े हो कर श्री रुद्रम् का पाठ किया करते थे और उन्होंने इस प्रकार भगवान् से मोक्ष प्राप्त किया।

(अनुवादिका : स्वामी शिवाश्रितानन्द माता जी)

आपका शान्ति-दूत :

प्रेम और भक्ति : भक्ति योग

परम पावन श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज

(पूर्व-अंक से आगे)

भगवान् के साथ भक्तिमय सम्बन्ध

अभी इस समय आपकी चेतना बाह्यगामी है और यह केवल विषय-वस्तुओं की ओर उन्मुख है, इसलिए आपको केवल संसार ही दिखायी देता है। आपके भावुकतापूर्ण सम्बन्धों—आपकी रुचियों और अरुचियों—ने आपको बाँध रखा है और आपको इनमें आसक्ति हो गयी है। मनुष्य के व्यक्तित्व के भावनात्मक पक्ष की क्षमताएँ उसे इन बाह्य अनुभवों की ओर आकर्षित करके उन्हीं में उलझाये रखने में सहायता करती हैं। सभी प्रकार के अनुभव—सुख, दुःख, कष्ट, उत्तेजना, परिपूर्णता, निराशा—ये सब इसी उलझाव के परिणाम हैं। धूम्रपान, मद्यपान इत्यादि जैसी छोटी-मोटी बुरी आदतों से ले कर लोगों और वस्तु-पदार्थों के प्रति तीव्र प्रेम-घृणा इत्यादि जैसी अत्यन्त दुष्कर परिस्थितियों में घिर जाना इसके उदाहरण हैं।

यह उलझाव इतने अधिक सुदृढ़ होते हैं कि इनसे छुटकारा पाना असम्भव प्रतीत होता है। तथापि, यदि मनुष्य के व्यक्तित्व में यह तथ्य उसे बाह्य जगत् में उलझा कर रखने की इतनी शक्ति रखता है तो इस शक्ति का उपयोग वह स्वयं को परम सत्ता से पूरी तरह से जोड़ने में भी कर सकता है। हमारे पूर्वजों ने वस्तुतः इसी पर चिन्तन किया और उनका उत्तर इस प्रकार उद्घोषित हुआ, ''हाँ!'' जो क्षमताएँ आपमें पहले से ही हैं, जो आपको अब तक संसार में उलझाये रखने में लगी रही हैं, उन्हीं का उपयोग करके आप दिव्यता का साक्षात्कार कर सकते हैं। जिस क्षमता का झुकाव अभी तक पूर्णतया संसार की ओर ही रहा है, उसे प्रशिक्षित किया जा सकता है और भगवान् की ओर उन्मुख किया जा सकता है। यह व्यक्ति का बन्धन से मुक्ति की ओर अग्रसर होने का शुभारम्भ और भौतिक-चेतना से दिव्य-चेतना की ओर अग्रसर होने का शुभारम्भ होगा।

अपने व्यक्तित्व के भावनात्मक स्तर द्वारा भगवान् से सम्बन्ध भक्ति मार्ग के माध्यम से स्थापित होता है। इसे भक्ति योग कहा जाता है। भक्ति शब्द प्रेम का, श्रद्धापूर्ण प्रेम का प्रतीक है जो अत्यन्त गहन प्रेम अथवा श्रद्धा को अभिव्यक्त करता है। भगवान् के प्रति प्रेम एक ऐसी शक्ति है जो जल में छोटी सी तरंग की भाँति उदित हो सकती है; किन्तु फिर धीरे-धीरे यही एक शक्तिशाली लहर बन कर समस्त निम्न आसक्तियों को बहा कर ले जा सकती है। गुरु की कृपा से या भगवान् की दया से इसका उद्भव आपके हृदय में अनायास भी हो सकता है। आपका हृदय, जो अब तक शुष्क ही था, अचानक किसी छोटी सी घटना के कारण प्रेम से भर सकता है—किन्तु यह केवल प्रारम्भ ही है। इस भक्ति भाव को निश्चित रूप से विकसित करना होगा, क्योंकि यह अपने-आप ही विकसित नहीं होगा। भगवान् के साथ एक प्रेमपूर्ण नाता जोड़ कर और फिर इसे परिपूर्णता की अवस्था में पहुँचाने तक आपको अत्यन्त सावधानी और एकाग्रता के साथ निरन्तर प्रयत्न करते रहना होगा। यही भक्ति योग का सार है।

भगवान् के साथ भक्तिपूर्ण सम्बन्ध आपके लिए इस सामान्य स्तर से ऊपर उठने का, समस्त मानवीय सम्बन्धों से परे जाने का और आनन्दमयी दिव्यानुभूति में प्रवेश पाने का एक उदात्त मार्ग बन जाता है। यद्यपि

आपको यह लग सकता है कि भगवान् तो आपसे बहुत दूर हैं, आप उनसे प्रेम कैसे करें? आप यह तो जानते हैं कि अपनी पत्नी या पति से, अपनी सन्तान से, मित्रों से या अपनी वस्तुओं से कैसे प्रेम होता है, क्योंकि वे साकार और स्पर्शनीय हैं, किन्तु भगवान् के साथ ऐसा नहीं है। यह धारणा कुछ-कुछ सही है; किन्तु भगवान् दूर हैं, यह मान लेना सही नहीं है। वे तो आपके अपने जीवन की साँसों से, आपके हाथों और पैरों से भी अधिक आपके निकट हैं। आपके अस्तित्व का मूल आधार वे हैं। वे आपके अन्तर्वासी, अन्तर्यामी हैं। वे आपसे किंचित् भी दूर नहीं हैं।

दुर्भाग्यवश, कुछेक परम्परावादी धारणाएँ भगवान् के सम्बन्ध में ऐसा पक्का रूप ले कर स्थापित हो गयी हैं, और उनके कारण हम इस प्रतिबन्धित विचारधारा के कारण दुःख भोग रहे हैं कि भगवान् कहीं अति दूर हैं और उनके साथ सम्पर्क होना असम्भव है। यह विचारधारा अत्यन्त हानिकारक है और यह मानव को उस अनुभूति को प्राप्त करने से वंचित कर देती है जिसके लिए वस्तुतः उसका जन्म हुआ है। भगवान् तो निकटतम हैं। वह आपके अपने आत्मस्वरूप हैं। वह आपसे भिन्न नहीं हैं; वह कहीं दूर नहीं हैं। उनके सम्बन्ध में संकेत करने के लिए आपको एक उँगली तक उठाने की भी आवश्यकता नहीं है—बस आपको अपने भीतर केवल झाँक कर देखना मात्र है।

निस्सन्देह, रहस्यवादी रूप में, वे यद्यपि दूरतम स्थित सितारे से भी अधिक दूर हैं तथापि इस तथ्य का भी विरोध नहीं है कि वे निकटतम से भी अधिक निकट हैं, क्योंकि वे सर्वत्र विद्यमान हैं। वे आपके भीतर हैं, और साथ ही इस अनन्त आकाश के दूरतम बिन्दु पर भी विद्यमान हैं। आप यह कह सकते हैं कि वह दूरस्थ हैं, किन्तु आपका यह कथन इस तथ्य का खण्डन नहीं करता कि वे आपके अन्तरतम आत्मा हैं। इसलिए वे न तो दूर हैं, न अनजाने हैं और न ही अदृश्य हैं। हाँ, इन भौतिक चक्षुओं से उन्हें देखा नहीं जा सकता। उनको अनुभव किया जा सकता है और उसके लिए आपको जागरूक होना पड़ेगा कि वह हैं। उदाहरण के लिए आप वायु को देख या छू नहीं सकते; किन्तु आप जानते हैं कि वायु है, क्योंकि अन्यथा आप श्वास भी नहीं ले सकते। जैसे ही आप श्वास लेते हैं, तत्काल ही आपको ज्ञात हो जाता है कि वायु आपके चतुर्दिक् विद्यमान है। किसी भी वस्तु-पदार्थ की विद्यमानता के लिए उसका भौतिक इन्द्रियों द्वारा द्रष्टव्य होना अथवा स्पृश्य होना आवश्यक नहीं है। भगवान् निस्सन्देह यहाँ हैं।

पुनश्च : आप सोचते होंगे, ''मैं अपनी पत्नी को, अपने पति को, मित्रों को, परिवार को—यहाँ तक कि अपने इस छोटे से कुत्ते को भी प्रेम कर सकता हूँ—क्योंकि मेरे सामने कुछ है। किन्तु भगवान् से कैसे प्रेम किया जा सकता है?'' यह एक सामान्य व्यावहारिक प्रश्न है, और इसके लिए अत्यन्त सरल, सहज एवं स्वाभाविक मार्ग, भक्ति का मार्ग दिया गया है। आपको यह समझने की भूल नहीं करनी चाहिए कि हम भगवान् के साथ केवल श्रद्धा-भक्ति का, भयमिश्रित भक्ति का या आध्यात्मिकता का सम्बन्ध ही जोड़ सकते हैं। आपकी भक्ति में यह तत्त्व भी भले ही हो, किन्तु भगवान् के प्रति आपके भाव केवल इसी में सीमित नहीं होने चाहिए। यदि ऐसा होगा तो यह एक बाधा बन जायेगा। आपको अपने और भगवान् के मध्य दूरी को नहीं रहने देना चाहिए।

हमारे प्राचीन सन्तों के पास इस समस्या का उत्तर था। वे समझ गये थे कि सम्भवतया आप यह न जानते हों कि स्वयं को भगवान् के साथ कैसे जोड़ा जा सकता है, इसलिए उन्होंने पूछा कि आपके जीवन में आपका सबसे प्रिय नाता क्या है? क्या आप एक युवा दम्पति हैं और आप अपने नव-जीवन साथी से गहन प्रेम करते हैं? क्या यही प्रेम आपको सबसे मधुर लगता है? ठीक है, तब आप भगवान् को अपने जीवन का

उतना ही मधुर, उतना ही प्रिय मानें और उन पर उतने ही प्रेम की वृष्टि करें जितनी और जैसी मनुष्य के लिए की जाती है। क्या आप वयोवृद्ध हैं और अपने नन्हे पौत्र से अथाह प्रेम है? ठीक है, यदि ऐसा प्रेम है तो भगवान् को वैसा ही अपना नन्हा बालक समझ लें और उन पर वही अबाध, सहज प्रेम उँडेल दें। सन्तों ने कहा, ''किसी भी प्रकार के परायेपन की भावना की आवश्यकता नहीं है, किसी भी प्रकार के परिवर्तन की अनिवार्यता नहीं है। बस अपने सहज स्वाभाविक रूप में रहें!''

भक्ति योग में प्रेममय सम्बन्धों का विस्तृत चुनाव दिया गया, और यही इसे वेदान्त के पथ से भिन्न बनाता है। वेदान्त जीवात्मा की दिव्यता की ओर अग्रसर होते हुए विशुद्ध लोकोत्तर एवं परिपूर्ण अवस्था में पहुँचने की एक यात्रा है। दूसरी ओर भक्ति मार्ग जीवात्मा की भगवान् की ओर व्यक्तिगत रूप से अग्रसर होने की यात्रा है। भगवान् के भक्त यह परवाह नहीं करते कि भगवान् का जगत् के साथ दार्शनिक दृष्टि से क्या सम्बन्ध है। भक्त का ध्यान तो केवल अपने साथ भगवान् के सम्बन्ध की ओर रहता है। उसके लिए भगवान् की महानता, शक्ति अथवा भव्यता का उतना महत्त्व नहीं है अपितु भगवान् के ऐसे जीवन्त प्रेम का महत्त्व है जो करुणा, कृपा, अपनत्व और स्नेह से भरपूर हो! यह मानवीय सम्बन्धों द्वारा अपने इष्ट की ओर की व्यक्तिगत पहुँच है, और भगवान् एक प्रकार से उसको किसी भी मानवीय सम्बन्ध के माध्यम से अपनी ओर आने की स्वीकृति दे देते हैं। आप भगवान् को अपना एक ऐसा बालक अथवा मित्र मान सकते हैं, जिससे आप अत्यन्त स्नेह एवं अपनत्व से अपने मन की बात कर सकते हों। यदि आपके हृदय में यह भावना है कि 'भगवान् तो मेरे मालिक हैं, मैं अपना सर्वस्व उनको समर्पित करते हुए उनसे प्रेम करूँगा और अपने प्राण तक उन पर न्योछावर कर दूँगा,' तो आप भगवान् को अपना मालिक मान कर उनके साथ मालिक और दास का सम्बन्ध जोड़ सकते हैं।

यदि आप भारतीय आध्यात्मिक ग्रन्थों का अध्ययन करें तो आप ऐसे अद्भुत जगत् में प्रवेश करेंगे जिसमें भक्तों के भगवान् के साथ विभिन्न प्रकार के अत्यन्त सुन्दर सम्बन्धों के विस्तृत विवरणों का भण्डार प्राप्त होगा। भगवान् के भक्त अपने इष्टदेव के साथ कैसे-कैसे विविध प्रकार के सम्बन्ध स्थापित करके अपना सम्पूर्ण प्रेम उँड़ेलते हैं, यह इन ग्रन्थों में से पढ़ना अत्यधिक प्रेरणाप्रद अनुभव है। गीता में भगवान् ने एक स्थान पर कहा है, ''भक्त मुझे जिस रूप में भजता है, मैं बिलकुल उसी रूप में उसके समक्ष प्रकट हो जाता हूँ।'' जो कष्टों से छुटकारा पाने के लिए आर्त भाव से पुकारता है, उसकी वे रक्षा करते हैं। जो अभावग्रस्त है, वे उसके समस्त अभावों को दूर कर देते हैं। निर्बल के वे बल बन कर आते हैं। दु:खी के लिए वे सुख और प्रसन्नता के रूप में प्रकटित होते हैं। प्रेमा-भक्ति के ये विभिन्न आध्यात्मिक भाव भक्ति मार्ग के मूल-भाव हैं। इन्हीं भावों की अनुभूति भगवान् को आपके लिए जीवन्त बनाती है। ये आध्यात्मिक भावनाएँ आपके लिए स्वाभाविक हैं क्योंकि इन सबका अनुभव आप सांसारिक जीवन में अपनी प्रिय वस्तु-पदार्थों के और अपने प्रिय जनों के सम्बन्धों में करते रहे हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि जब आप भगवान् के साथ ऐसा प्रिय आध्यात्मिक सम्बन्ध जोड़ने का प्रयत्न कर रहे हैं तो आप सांसारिक प्रेम एवं अपनत्व के सम्बन्धों को कुचल रहे हैं। नहीं, किञ्चित् भी नहीं, यह तो आप इन भावनाओं की अनुभूति का उपयोग केवल उच्चतर सम्बन्ध स्थापित करने में करते हैं। भक्ति योग सर्वदा सर्वत्र माधुर्य है—प्रारम्भ में, मध्य में और अन्त में भी। यह जीवन का वास्तविक सार है और यही तो है जो जीवन को सुन्दर बनाता है।

(क्रमश:)

(अनुवादिका : स्वामी शिवाश्रितानन्द माता जी)

आध्यात्मिकता का सत्य-स्वरूप :

मनोनिग्रह आत्म-संयम है

परम पावन श्री स्वामी कृष्णानन्द जी महाराज

(पूर्व-अंक से आगे)

अत:, यौगिक सिद्धि, प्रक्रिया बनने के स्थान पर जाग्रति में परिवर्तित हो जाती है। जब हम सो कर उठते हैं, तब किसी कार्य में संलग्न नहीं हो रहे होते अथवा किसी कार्य को नहीं कर रहे होते। जब हम सो कर उठते हैं, तो हम कुछ भी नहीं कर रहे होते, तथापि सो कर उठने के बाद पूर्णतया एक नवीन संसार में प्रवेश करने की उपलब्धि के कारण इतना प्रबल अन्तर है। 'शयन के उपरान्त जागना' यह उपलब्धि किसी कार्य का परिणाम नहीं है। इसी कारण आचार्य शंकर इस विचार पर अथक बल देते हैं कि मोक्ष कोई कार्य नहीं है, तथा इसे किसी भी कर्म द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता। इस अद्‌भुत उद्‌घोष के पीछे कारण यह है कि जिसे हम प्राप्त करना चाहते हैं, उसका हमारे साथ इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि हमारे व्यक्तित्व की कोई गतिविधि उसे स्पर्श नहीं कर सकती; तथा मोक्ष अन्य कुछ नहीं, वरन् एक विस्तृत वास्तविकता में जाग्रति है, जो हमारे भीतर ही निहित है, हमसे बाह्य नहीं।

समस्त क्रियाकलाप चेतना की बाह्य पदार्थों की ओर बहिर्मुखी गतिशीलता है। परन्तु यहाँ पदार्थ हमारा अपना 'आत्मा' है, तथा इसीलिए, हमारी चेतना की गतिशीलता ऐसी नहीं हो सकती। यहाँ, पुन:, यह कारण है कि सामान्य कार्यशीलता का कोई प्रयोजन नहीं है। भगवद्‌गीता के ग्यारहवें अध्याय में कहा गया है, ''श्रेष्ठ कोटि के कर्म भी हमें 'विश्वरूप दर्शन' योग्य नहीं बना सकते।

न वेदयज्ञाध्ययनैर्न दानैर्न च क्रियाभिर्न तपोभिरुग्रै:।
एवंरूप: शक्य अहं नृलोके द्रष्टुं त्वदन्येन कुरुप्रवीर।।''

(गीता ११.४८) इस संसार में हम जो भी श्रेष्ठ कर्म करें, वह इस प्रयोजन हेतु अनुपयुक्त तथा अयोग्य होगा। सामान्य तपस्या का अत्यन्त भीषण स्वरूप, संसार में श्रेष्ठ से श्रेष्ठ कर्म तथा सेवाएँ—ये सब मिल कर भी इस प्रयोजन हेतु उपयुक्त नहीं कहलाये जा सकते। ऐसा इसीलिए है क्योंकि संसार में ये समस्त आश्चर्यजनक कर्म, जिनकी हम चर्चा कर रहे हैं, सांसारिक हैं, परन्तु हम इस संसार से किंचित् भिन्न हैं। हम संसार से भिन्न क्यों हैं? ऐसा इसीलिए है क्योंकि संसार चेतना की बहिर्मुखता का नाम है, परन्तु क्योंकि हम अविभाज्य सत्ता हैं, हमें बहिर्मुखी नहीं किया जा सकता। अविभाज्यता का तात्पर्य सार्वभौमिकता है। ये समस्त शब्द नवदीक्षित के लिए हैं, अर्थात् अन्तत: कुछ नहीं, परन्तु उनका महत्त्व इतना प्रचण्ड है कि उनके वास्तविक अर्थ पर किया गया किंचित् विचार-मात्र भी हमें हमारी जड़ों से हिलाने हेतु पर्याप्त है।

अत:, योग-प्रणाली हमें बताती है कि मानसिक चंचलताओं का नियन्त्रण अत्यन्त सावधानीपूर्वक करना होगा। वे क्यों कहते हैं, कि यह सब अत्यन्त दुष्कर है तथा इसकी तुलना तलवार की धार, मीन-पथ, आकाश में पक्षियों के मार्ग इत्यादि से क्यों की जाती है? ये सब सम्पूर्ण

प्रक्रिया को समझने की तथा इन्हें समझ कर अभ्यास में लाने की दुष्करता का आभास कराने के लिए दी गयी उपमाएँ हैं। अत:, हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि योग अनुभवजन्य भाव में एक गतिविधि के स्थान पर जाग्रति की एक प्रक्रिया है। यह कोई कार्य नहीं है जिसे हम करें। तथा, यह जाग्रति क्या है? यह किस प्रकार सम्भव है? उत्तर है, मन पर नियन्त्रण से।

परन्तु, हम उसकी चर्चा असम्भवता के रूप में करते आ रहे हैं। अब, योग इस सम्पूर्ण प्रश्न का उत्तर देता है। अधिकतम उच्चतर सत्य—उपमा, तुलना, कल्पना के द्वारा ही स्पष्ट किये गये हैं, न कि तर्क अथवा वैज्ञानिक विश्लेषण द्वारा। कभी-कभी तर्कपूर्ण, सटीक विश्लेषणात्मक व्याख्या के स्थान पर इसकी उन्नत व्याख्या कथाओं द्वारा दी जाती है। योगवासिष्ठ का निष्कर्ष है कि अलंकारिक कथाएँ सत्य के स्वरूप के विषय में तार्किक तर्क-वितर्क से अधिक बताती हैं क्योंकि तर्क स्वयं तार्किक-दोष से ग्रस्त होता है। तार्किक-दोष में सर्वप्रथम कर्ता तथा विधेय का विच्छेदन आवश्यक होता है, तथा तब वह संश्लेषण द्वारा विधेय को कर्ता से जोड़ने का प्रयास करता है। हम किसी व्यक्ति की टाँग, चिकित्सा द्वारा जोड़ने के लिए तोड़ते हैं। यही कार्य हम सामान्यतया सर्वोच्च तार्किक वियोजन (deductions) में भी करते हैं। परन्तु, सत्य का स्वभाव ऐसा है कि उस तक इस प्रकार नहीं पहुँचा जा सकता। उसके लिए आत्म-पवित्रता की आवश्यकता है, जो आत्म-जाग्रति का एक उपाय है; तथा यह पवित्रात्मक प्रक्रिया आत्म-तादात्म्यता के एक चरण से दूसरे चरण तक क्रमश: जाने के सदृश है।

सम्पूर्ण जीवन, अन्य कुछ नहीं, वरन् आपकी स्वरूप के प्रति जाग्रति है। यदि हम इस विषय पर ठीक प्रकार से तथा गहनता से विचार करें, तो हम जानेंगे कि इस संसार में 'पदार्थ' नामक कोई वस्तु नहीं है; मात्र आत्मतत्व है। यहाँ तक कि, जिसे हम पदार्थ कहते हैं, वह हमारा ही भाग है क्योंकि हम उस पदार्थ को स्वयं से सम्बद्ध करते हैं तथा अपना अंग बनाते हैं, तथा जिस क्षण वह सामाजिक दृष्टि में हमारा अंग बन जाता है, वह हमारा सामाजिक स्वरूप बन जाता है; वह मात्र 'पदार्थ' नहीं रह जाता। परिवार एक ही है, यद्यपि इसमें बाह्य सदस्य होते हैं। यह ऐसा है क्योंकि यह एक ही है जिसके सदस्यों से हम अत्यधिक आसक्त हैं। देश, काल तथा कारणत्व में लिप्त होने के कारण यह वास्तविक स्वरूप नहीं हो सकता; परन्तु क्योंकि यह अविभाज्य नहीं है, यह वास्तविक स्वरूप न होते हुए भी हमारा स्वरूप है। अन्यथा, हम इससे सम्बद्ध क्यों हैं? हम इस बारे में विचार क्यों कर रहे हैं? हमें इससे प्रयोजन क्यों है? हम इससे क्यों सम्बद्ध हैं? हमारा राष्ट्रीय स्वरूप अथवा व्यक्तित्व भी है, तथा इसके कारण हम स्वयं को राष्ट्रीयता द्वारा पहचानते हैं। हम स्वयं को एक धर्म-सम्प्रदाय अथवा भाषा-समूह द्वारा पहचानते हैं, तथा हम स्वयं की मानव-जाति द्वारा पहचान करते हैं। संसार में अन्य किसी वस्तु से प्रयोजन होने की अपेक्षा हमें मानवता से प्रयोजन है। क्या ऐसा नहीं है? यह भी हमारा एक प्रकार का स्वरूप है। हम जो भी कर रहे हैं, मात्र मनुष्य के लिए कर रहे हैं, जैसे भगवान् ने केवल मनुष्य को ही बनाया है तथा इस संसार में मनुष्य के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है—यद्यपि यह सत्य नहीं है। हम मानव-जाति के

लिए इतने चिन्तित क्यों हैं, तथा पशुओं—शेर, चीता, सर्प, बिच्छू के लिए क्यों नहीं, मानो वे सत्ता-रहित हों। यह एक प्रजाति के साथ तादात्म्य द्वारा हमारा विशेष प्रकार का पार्थक्य है।

वास्तव में, आत्मा का पदार्थ से सम्बद्ध होने जैसा कुछ नहीं है, क्योंकि जिस क्षण आत्मा किसी पदार्थ से सम्बद्ध होती है, तो वह पदार्थ, पदार्थ नहीं रह जाता। वह आत्मा का ही एक अंग बन जाता है। इसीलिए ऐसा कहा जाता है कि हम जिसे प्रिय मानते हैं, वह आत्म-तत्त्व ही है। किसी पदार्थ को प्रिय मानने जैसा कुछ भी नहीं है, क्योंकि जिस क्षण हमें वह पदार्थ प्रिय लगता है, वह पदार्थ, पदार्थ नहीं रह जाता; वह हमारा स्वरूप बन जाता है। उस तथाकथित पदार्थ में भी हम स्वयं को ही प्रेम करते हैं। महान् ऋषि याज्ञवल्क्य ने उद्घोषित किया है कि जहाँ स्वयं का अभाव है, वहाँ किसी प्रकार का प्रेम सम्भव नहीं है। ''**आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति**'' (बृहदारण्यक उपनिषद् २.४.५) आत्मा हेतु ही हम पदार्थ को प्रिय मानते हैं। आत्मा के सुख के लिए ही हम पदार्थों को प्रिय नहीं मान रहे; हम आत्मा से ही प्रेम कर रहे हैं, अन्य कुछ नहीं। तथा, जब हम 'आत्म-भाव' को विस्तृत कर देते हैं, हम किसी बाह्य पदार्थ के प्रति प्रेम नहीं कर रहे, वरन् आत्मा के ही दूसरे रूप को प्रेम कर रहे हैं। यदि हम सर्वथा स्वार्थी हों, तो हम केवल अपने भौतिक स्वरूप को प्रेम करेंगे, केवल इस भौतिक शरीर को। यदि हम अधिक परोपकारी तथा सभ्य होंगे, तब हम स्वयं का तादात्म्य अपने परिवार, समाज, राष्ट्र एवं अन्य राष्ट्रों से करेंगे। हम सम्पूर्ण संसार का रूप भी धारण कर सकते हैं। परन्तु, अन्ततः, यह आत्म-रूप है। उसके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है।

सम्पूर्ण बात यह है कि किसी न किसी रूप में आत्मा के अतिरिक्त कहीं भी कुछ नहीं है। वह चाहे वास्तविक हो अथवा अवास्तविक, यथार्थ में यह आत्मा-रूप ही है। नकली नोट असली प्रतीत हो सकते हैं। यद्यपि वे नोट नकली हैं, फिर भी उनका प्रयोग असली नोट की तरह कर दिया जाता है; अन्यथा, उनका कोई महत्त्व नहीं है। उसी प्रकार हम स्वयं के लिए कृत्रिम स्वरूप का निर्माण भी करें, तो भी उसका महत्त्व वास्तविक स्वरूप के समान होना चाहिए, अन्यथा यह निरर्थक है।

अतः, योग हमें सम्पूर्ण विषय के मूल तक ले जाता है, तथा हमें समस्त पदार्थों के प्रति पूर्वधारणाओं तथा पूर्वानुमानों से भ्रम-रहित करना चाहता है, जिससे हमें यह ज्ञात हो सके कि मन को नियन्त्रित करना क्या होता है। मन का नियन्त्रण एवं आत्म-नियन्त्रण एक ही हैं।

चित्त-निरोध आत्म-संयम है। 'चित्त-निरोध' 'आत्म-विनिग्रह' है; दोनों समान हैं। जहाँ तक इसे समझना कठिन है कि आत्मा क्या है, मन क्या है, इसके परिवर्तन क्या हैं, योगाभ्यास कठिन हो जाता है; तथा इसीलिए हमें योग-शास्त्र द्वारा प्रदत्त विभिन्न निर्देशों को दृढ़-उद्देश्य तथा तीक्ष्ण बुद्धि के साथ सुव्यवस्थित रूप में ग्रहण करना है।

समाप्त

(अनुवादिका : मेधा सचदेव)

मानव से ईश–मानव :

गुरुदेव के चमत्कार

श्री एन. अनन्तनारायणन्

(पूर्व–अंक से आगे)

गुरुदेव ने उसी चौपन्ने में अतीन्द्रिय श्रवण, सम्मोहन विद्या और दूरसंवेदन जैसे अन्य कई गूढ़ विषयों का भी वर्णन किया है। महात्माओं द्वारा दूरसंवेदन के उपयोग किये जाने के सम्बन्ध में स्वामी जी लिखते हैं :

''महान् सन्त और महात्मा लोग जो हिमालय की कन्दराओं में रहते हैं, वे दूरसंवेदन के माध्यम से संसार में रहने वाले अधिकारी जिज्ञासु साधकों अथवा योगियों को अपने सन्देश भेज देते हैं...इन महात्माओं के लिए यह अनिवार्य नहीं कि वे मंच पर आयें और प्रवचन करें...मंच से प्रवचन करने वाले द्वितीय श्रेणी के वे लोग हैं जिन्हें दूरसंवेदन विद्या का ज्ञान नहीं होता।''

स्वामी जी ने जाने–अनजाने में इन विभिन्न गुह्य विद्याओं का उपयोग लोगों की शारीरिक, मानसिक अथवा आध्यात्मिक सहायता हेतु किया, इसमें किंचित् भी सन्देह नहीं है। इस सम्बन्ध में असंख्य उदाहरणों की सूचनाएँ प्राप्त होती रही हैं। ये चमत्कार विभिन्न रूपों में व्यक्त हुए। कई बार स्वामी जी ने कोई पत्र, तार अथवा पुस्तक का पार्सल भेजा और जिसे भेजा गया, उसे दूरसंवेदन से इसका सन्देश मिला और उसी समय साथ ही वह भेजी गयी वस्तु भी पहुँच गयी जिससे दूर प्रेषित–सन्देश की यर्थाथता प्रमाणित हो गयी।

विशेषतया उदाहरणस्वरूप : कोलकाता के वकील ए. एस. मानी ने बताया, ''कल प्रातः राजम ने कहा कि विगत रात्रि में आपश्री के उसने स्वप्न में दर्शन किये और आपने उसे बहुमूल्य एवं अद्भुत पुस्तक 'साधना' का उपहार दिया। कैसा चमत्कार है कि उसी दिन डाकिया पार्सल ले कर आया जिसे राजम ने ही लिया क्योंकि मैं उस समय कार्यालय में था और पार्सल में वही 'साधना' पुस्तक ही थी!''

कई बार यदि किसी भक्त ने स्वामी जी की किसी पुस्तक–विशेष को लेने के विषय में सोचा ही होता था और उसके मन में यह इच्छा प्रबल होती ही थी तो उसी समय ऋषिकेश से उसी पुस्तक का पार्सल पहुँच जाता था। ऐसा केवल पुस्तकों तक ही सीमित नहीं था। कई बार ऐसा होता कि आश्रम के अन्तेवासी के मन में किसी वस्तु की इच्छा उत्पन्न हुई, जैसे काजू या फिर गोभी खाने की इच्छा, और आश्चर्य! उसी समय स्वामी जी ने उसे स्नेहपूर्वक यह कहते हुए बुला लिया, 'मैंने सोचा कि सम्भवतया आपको यह रुचिकर होगा,' और बिलकुल वही उसकी इच्छित वस्तु उसे दे दी....पूर्णतया उसके बिना कहे ही। ऐसी बातों में गुरुदेव ने एक इच्छा–पूरक की भूमिका की।

और फिर ऐसे भी उदाहरण हैं, जहाँ स्वामी जी ने आगामी घटनाओं की पूर्व–सूचना दे दी थी, विशेष रूप से जहाँ सम्बन्धित भक्त का उत्साहवर्धन होने की बात हो। मदुरै के के. रंगास्वामी अयंगर को स्वामी जी ने उस समय दर्शन दिये जब उसकी पत्नी प्रसव–वेदना से छटपटा रही थी और तब स्वामी जी ने कहा, ''आपको दो पुत्रों की प्राप्ति होगी।'' उसकी पत्नी का निर्विघ्न प्रसव हुआ और दो जुड़वाँ शिशु, दोनों ही पुत्र हुए।

अयंगर के हर्ष और आश्चर्य की सीमा नहीं थी। ''कहाँ हिमालय! और कहाँ मदुरै!'' हर्षातिरेक एवं आश्चर्य से वह चिल्ला पड़ा, ''कैसे अद्‌भुत हैं शिवानन्द जी! कैसे चमत्कारी हैं! कैसा अचम्भा है!''

हंसराज खनीजा १९५२ में केवल दशवीं कक्षा पढ़ा था। स्वामी जी ने उससे पूछा कि क्या वह एम. ए. खनीजा है? उसने उत्तर दिया कि वह एम. ए. नहीं है। गुरुदेव बोले, ''यदि नहीं हो तो हो जाओगे।'' यद्यपि वह युवक उस समय नौकरी कर रहा था और आगे पढ़ाई करने का उसका कोई विचार भी नहीं था, तथापि स्वामी जी की कृपा से उसे आगे साधन मिल गया जिससे गुरुदेव का आशीर्वाद फलीभूत हुआ और वह एम. ए., एल-एल. बी. हो गया।

प्रायः गुरुदेव अपने शिष्यों के स्वप्नों में आ कर कार्य सिद्ध कर देते थे। उन्होंने स्वप्न के माध्यम से मन्त्रदीक्षा दी। स्वप्न में वार्तालाप किया और उनकी समस्याएँ हल कर दीं। स्वप्नों में ही संशय दूर कर दिये। जब कोई व्यक्ति अत्यधिक कष्टों से घिर कर इतना तनावग्रस्त हो गया मानो उसका शिर ही फट जाने वाला हो, तब दयालु गुरुदेव उसके स्वप्न में आते, उसके कष्टों का निवारण करते और अवचेतन स्तर पर उसे शान्त कर देते थे।

दक्षिण भारत के संस्कृत के विद्वान्, वेंकटरमण शास्त्रीगल के मन में संशय आ गया कि स्वामी शिवानन्द जी जीवन-मुक्त हैं या नहीं। उसी रात्रि को गुरुदेव उनके स्वप्न में दिव्य प्रकाश सहित प्रकट हुए और उनके संशय का निवारण कर दिया। तत्काल शास्त्री जी ने ब्राह्ममुहूर्त में ही शिवानन्द जी की अष्टादश श्लोकों में स्तुति लिखनी प्रारम्भ कर दी।

एक बार गुरुदेव का कोई भक्त अपनी साधना में कहीं अटक गया, और उसके अपने शब्दों में, ''मैं एक इंच भी आगे नहीं बढ़ पा रहा था।'' ऐसे कठिन क्षणों में एक दिन गुरुदेव ने उसे स्वप्न में दर्शन दिये और कहा कि आगामी दिन प्रातः ८ बजे वह उनसे मन्त्रदीक्षा ले ले, उसने वैसे ही किया। दीक्षा ने उसे आध्यात्मिक विकास की ओर अग्रसर कर दिया।

मद्रास के एस. रामकृष्णन गुरुदेव के आश्रम में आये हुए थे। प्रातः की वेला में उन्हें स्वामी जी ने स्वप्न में दर्शन दिये और प्रश्न किया, ''मैंने आपको जो प्रथम पत्र लिखा था, क्या उसका समस्त विषय आपको स्मरण है? क्या आप उसे अभी दोहरा सकते हैं?'' आगामी दिन प्रातः ९ बजे शिवानन्द कुटीर में पाद पूजा थी जिसमें रामकृष्णन भी सम्मिलित हुए। पूजा के उपरान्त उन्होंने गुरुदेव से मन्त्रदीक्षा प्राप्त की। तभी स्वामी जी उनकी ओर घूमे और पूछा, ''मैंने आपको जो प्रथम पत्र लिखा था, क्या उसका समस्त विषय आपको स्मरण है? क्या आप उसे अभी दोहरा सकते हैं?'' रामकृष्णन को केवल पत्र का विवरण ही स्मरण नहीं था, अपितु यह तथ्य भी स्मरण था कि बिलकुल वही प्रश्न कुछ घण्टे पूर्व उन्होंने स्वप्न में भी पूछा था! वह आश्चर्यचकित रह गये और उनकी श्रद्धा और भी अधिक बढ़ गयी।

हैदराबाद के एम. आर. सिबल ने बताया कि उन्हें स्वप्नों में गुरुदेव से योग और वेदान्त के प्रशिक्षण नियमित रूप से प्राप्त होते रहे हैं। एबारवाश, जर्मनी के एक लड़के ने स्पष्ट कहा कि उसे गुरुदेव ने स्वप्न में ॐ का गान करना सिखाया है।

(क्रमशः)

(अनुवादिका : स्वामी शिवाश्रितानन्द माता जी)

शिवानन्द ज्ञानकोष :

हिन्दू धर्म

परम पावन श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज

(पूर्व-अंक से आगे)

वेद तथा उपनिषद्

श्रुति ही वेद है। यह दैवी प्रकाशन प्रत्यक्षानुभूति द्वारा होता है। अत: इसे अपौरुषेय माना जाता है। यह किसी विशेष रचयिता द्वारा तो होता नहीं।

स्वयं ईश्वर द्वारा, भारत के प्राचीन ऋषियों को यह शाश्वत ज्ञान प्राप्त हुआ। 'ऋषि' का अर्थ ही 'द्रष्टा' होता है। वह विचार का दर्शक ही होता है। यह विचार उनका अपना तो कदापि होता नहीं। ऋषि तो द्रष्टा मात्र अथवा श्रोता होता है। तभी तो वेदों को 'श्रुति' कहा गया है। विचार तो पूर्व से था ही, ऋषि तो केवल द्रष्टा है। ऋषि को आध्यात्मिक अनुसन्धान करने का श्रेय है; वेद ऋषि-कृत नहीं है। वह प्रत्यक्षानुभूति को जन-साधारण तक पहुँचाने का माध्यम है। यह शाश्वत ज्ञान तो दैवी प्रकाशन है। अन्य सभी धर्मों के संस्थापक भगवान् के विशेष दूत रहे, किन्तु वेदों का स्रोत कोई व्यक्ति-विशेष नहीं रहा। वेद भगवद्-ज्ञान की शाश्वतता के आधार पर स्वत:प्रमाण हैं।

मानव के पुस्तकालय में प्राचीनतम ग्रन्थ वेद ही है। वेद ही आध्यात्मिक परम-ज्ञान का स्रोत है। इस धर्म के मूल में ईश्वर स्वयं विद्यमान है। आदिकाल में इस ज्ञान का प्रादुर्भाव मनुष्य के लिए हुआ। यही सब ज्ञान वेदों में संकलित किया गया।

उपनिषद् वेदों का अन्तिम भाग है। इन पर आधारित ज्ञान का नाम ही वेदान्त है। उपनिषद् को वेदों का सार तथा लक्ष्य भी कह सकते हैं। हिन्दू धर्म का मूलाधार वेद ही है।

ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक, श्वेताश्वतर उपनिषदों का महत्त्व विशेष उल्लेखनीय है। यह सर्वमान्य प्रामाणिक ग्रन्थ हैं।

भारत के भिन्न-भिन्न दर्शनों जैसे—अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैत, शुद्धाद्वैत, भेदाभेद आदि के दार्शनिकों ने उपनिषदों को प्रामाणिक स्वीकार किया है। उन्होंने व्याख्या तो मतानुसार की, किन्तु प्रामाणिक आधार इनको ही माना। सभी के दर्शनों का आधार उपनिषद् ही हैं।

उपनिषदों का दर्शन परमोच्च, परमोत्कृष्ट, अति गम्भीर तथा आत्म-प्रेरक है। उपनिषदों में सूक्ष्मतम शाश्वत सत्य का प्रकाशन है। पाश्चात्य विद्वानों ने भी उपनिषदों के ऋषियों की मुक्तकण्ठ से भूरि-भूरि सराहना की है। वे उपनिषदों के विचारों की महत्ता पर चकित रह गये। शोफनहार ने उपनिषदों का न केवल स्वाध्याय ही किया, किन्तु रात्रि में सोने से पूर्व इन पर ध्यान लगाने का भी बराबर अभ्यास करते रहे। वे कहते हैं—''उपनिषद् मेरे जीवन-काल में शान्ति प्रदान कर रहे हैं, और मरणोपरान्त भी सान्त्वना प्रदान करते ही रहेंगे।''

प्राचीन ऋषियों का यह ज्ञान केवल हिन्दुओं की ही थाती नहीं। यह ज्ञान तो सार्वभौमिक है और सार्वजनिक है। गीता तथा उपनिषद् समग्र विश्व की निधि हैं।

हिन्दू पौराणिक कथाएँ

प्रत्येक धर्म के तीन अंग हैं—(१) दर्शन, (२) देवी-देवताओं की गाथाएँ और (३) क्रिया-पद्धति। दर्शन में धर्म का सार निहित रहता है। इसमें लक्ष्य, मौलिक सिद्धान्त तथा लक्ष्य-प्राप्ति के साधन होते हैं। ये गाथाएँ महान् आत्माओं, मानवेतर प्राणियों तथा देवी-देवताओं के रोचक उदाहरणों से शुष्क, मौलिक सिद्धान्तों की व्याख्या करती हैं। ये क्रिया-पद्धतियाँ दर्शन के सूक्ष्म सिद्धान्त को और अधिक स्थूल रूप प्रदान करती हैं। ये पद्धतियाँ विभिन्न संस्कारों का रूप धारण कर लेती हैं।

गाथाएँ प्रत्येक धर्म का भाग रहती हैं। ये गाथाएँ दर्शन का ही स्थूल-रूप होती हैं। ये कल्पित कथाएँ तथा अपूर्व कहानियाँ जन-साधारण के प्राचीनतम वृत्तान्तों पर आधारित रहती हैं। इन गाथाओं से उच्च आदर्शों द्वारा जीवन के परम लक्ष्य की प्राप्ति की प्रेरणा मिलती है। कथा, कहानियों एवं दृष्टान्तों द्वारा गूढ़ एवं सूक्ष्म विचारों-उपदेशों को रोचक बनाया जाता है। इन रोचक कथाओं के माध्यम से हिन्दू धर्म के उच्च दार्शनिक विचार एवं आदर्श जन-साधारण के अन्त:करण में संस्थित हो जाते हैं।

इन पौराणिक गाथाओं में इतिहास का सूक्ष्म पुट रहता है। अत: एक को दूसरे से पृथक् करना कठिन हो जाता है। हिन्दू धर्म की प्राचीन पौराणिक कथाओं का आधार महान् सत्य की पृष्ठ-भूमि पर रहता है। इन्हें केवल कल्पित कथाएँ मान कर आप नकार नहीं सकते। तर्क मत कीजिए। इन गाथाओं के अध्ययन के समय बुद्धि का प्रयोग अनावश्यक है। इस क्षेत्र में बुद्धि बाधक बन, आपको भ्रम में डाल देगी। अहंकार और मिथ्याभिमान को त्यागिए। कल्पनाशक्ति का अर्जन कीजिए। इन काल्पनिक गाथाओं द्वारा प्रकाशित परम सत्य से आप अवगत हो जाओगे।

भूगोल का अध्ययन तुम मानचित्रों से करते हो। मानचित्रों में देश वास्तव में तो कोई होता नहीं, किन्तु भिन्न-भिन्न देशों के सम्बन्ध में आपको ज्ञान प्राप्त करने में सहायता अवश्य मिलती है। इस प्रकार ये गाथाएँ दार्शनिक सूक्ष्म तत्त्वों का ज्ञान देती हैं। धार्मिक सिद्धान्तों का ज्ञान देने के उद्देश्य से ये रोचक कथाएँ तथा रूपक मन को प्रोत्साहित करते हैं। आदर्श तथा दिव्य-जीवन-यापन करने में तथा चरित्र-निर्माण में ये गाथाएँ सहायक रहती हैं। श्रीराम, श्रीकृष्ण, भीष्म, नल, हरिश्चन्द्र, लक्ष्मण, भरत, हनुमान्, अर्जुन, सीता, सावित्री, दमयन्ती तथा राधा आदि की जीवन-गाथाएँ जीवन-निर्माण, चरित्र-निर्माण एवं आदर्श आचरण के महान् प्रेरणा-स्रोत हैं। जब भी आपके समक्ष कोई समस्या आती है, अथवा आप द्विविधा में पड़ जाते हैं, या धर्मसंकट उपस्थित हो जाता है, तो ये पौराणिक कथाएँ आपके कर्तव्य का ठीक-ठीक समाधान कर देती हैं।

पुराणों में अनेक कथाएँ हैं। पुराणों के माध्यम से धर्म की शिक्षा सरल तथा रोचक बन जाती है। अब तक भी पुराण लोकप्रिय हैं। पुराणों में प्राचीन काल का इतिहास भी रहता है। वे लोक जो मानव के दृष्टिगोचर नहीं होते, ब्रह्माण्ड के ऐसे कई लोकों का वर्णन भी इनमें रहता है। ये अध्ययन में रोचक हैं, तथा सब प्रकार की जानकारी देते हैं। बच्चे अपनी महमाताओं से अनेक गाथाएँ सुनते ही हैं। नदी तट पर अथवा मन्दिरों में पण्डित भी कथाएँ करते हैं। किसान तथा मजदूर और बाजार के लोग ये कथाएँ सुनते हैं। इस प्रकार हिन्दू-सिद्धान्त तथा उच्च आदर्श जन-साधारण के हृदय-पटल पर अंकित हो जाते हैं।

(क्रमश:)

(अनुवादक : श्री स्वामी अर्पणानन्द जी महाराज)

बाल जगत्

विद्यार्थी जीवन में सफलता

संकल्प–साधना

प्रिय अमृत पुत्रो!

विद्यार्थियों को अपने संकल्प की उन्नति की ओर अधिक ध्यान देना चाहिए। आत्म–बल को ही संकल्प कहा जाता है। संकल्प का शुद्ध और अप्रतिहत अभ्यास किया जाये, तो अद्‌भुत कार्य भी सिद्ध कर लिये जा सकते हैं। बलवती इच्छा वाले व्यक्ति के लिए इस संसार में कोई भी कार्य असम्भव नहीं है। वासना से संकल्प अशुद्ध और निर्बल हो जाता है। एक–एक इच्छा यदि वश में कर ली गयी, तो संकल्प बन जाती है। काम–शक्ति, शारीरिक–शक्ति, क्रोधादि शक्तियों पर जब अधिकार प्राप्त कर लिया जाता है, तो वे संकल्प में विलीन हो जाती हैं।

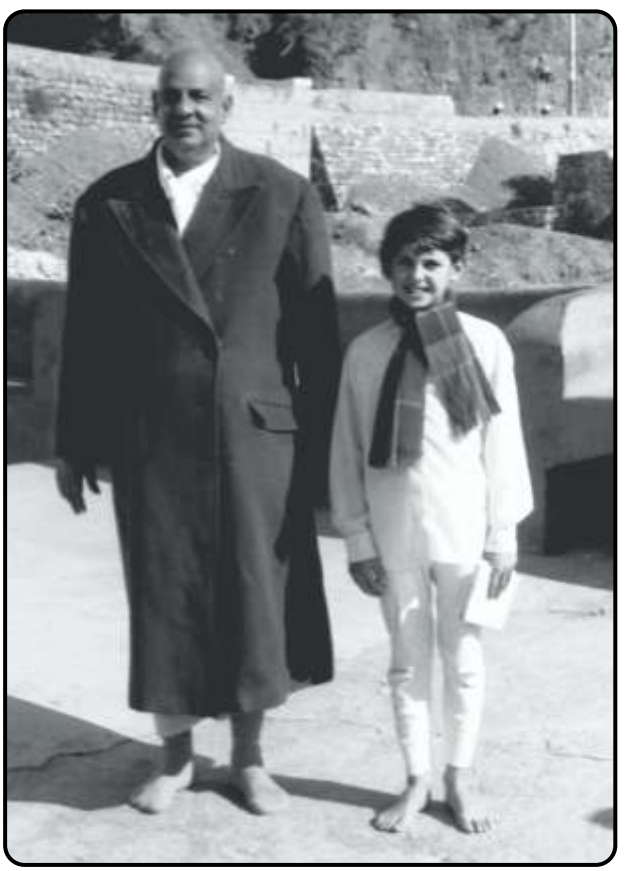

इच्छाएँ जितनी कम हों, संकल्प उतना ही बलवान् होता है। मनुष्य के अन्दर जितने प्रकार की मानसिक शक्तियाँ हैं यथा निर्णय–शक्ति, स्मृति–शक्ति, प्रज्ञा, धारणा–शक्ति, विवेक–शक्ति, अनुमान–शक्ति,

प्रत्यभिज्ञा-शक्ति—ये सभी संकल्प-शक्ति के काम करने पर तुरन्त ही काम करने लग जाती हैं।

एकाग्रता एवं सहिष्णुता का अभ्यास, घृणा, अप्रसन्नता और चिड़चिड़ाहट का दमन, विपत्तियों में धैर्य, तपस्या, स्वभाव पर विजय, तितिक्षा, दृढ़ता—ये सब संकल्प के विकास को सुगम बनाते हैं। धैर्यपूर्वक सबकी बातें सुननी चाहिए। इससे संकल्प का विकास होता है तथा दूसरों के हृदय को जीता जा सकता है।

स्वामी शिवानन्द

सद्गुणों का अर्जन

गम्भीरता (Earnestness)

किसी कार्य के प्रति गम्भीर अथवा उत्साहपूर्ण रहने की अवस्था गम्भीरता है। यह बुद्धि-नियन्त्रित उत्साह है।

एक गम्भीर मनुष्य दृढ़ निश्चयी होता है। वह लक्ष्य प्राप्ति हेतु उत्सुक, उद्यत एवं तत्पर होता है। वह कार्य करने की तीव्र आकांक्षा करता है। वह प्रत्येक कार्य को सम्पूर्ण हृदय से करता है।

क्या आप किसी विषय पर अपना अधिकार चाहते हैं अथवा कुछ विशिष्ट उपलब्धि चाहते हैं? स्वयं को उसके प्रति पूर्णत: समर्पित करिए। सच्चे तथा गम्भीर बनिए। आपको पूर्ण सफलता प्राप्त होगी।

कार्य के प्रति उत्साह एवं गम्भीरता उसकी सफलता में प्रतिभा से अधिक सहायक है। आप यह सर्वत्र पायेंगे कि उन मनुष्यों ने ही व्यापार में सफलता अथवा अन्य विशेष उपलब्धियाँ प्राप्त की हैं जिन्होंने व्यापार अथवा उस उपलब्धि के प्रति स्वयं को पूर्ण समर्पित किया है।

एक मनुष्य अत्यन्त बुद्धिमान हो, मेधावी हो परन्तु बिना गम्भीरता के कोई महान् व्यक्ति नहीं बनता है और न ही महान् कार्य कर सकता है।

स्वामी शिवानन्द

दुर्गुणों का नाश

आत्म–संशय (Diffidence)

आत्म–संशय आत्म–विश्वास की कमी है। यह अपनी शक्ति, औचित्य, ज्ञान, निर्णय अथवा क्षमता में विश्वास का अभाव है। यह भीरूता, आत्म–विश्वासहीनता एवं संकोचशीलता है।

आत्म–संशय संकल्प तथा कार्य–निष्पादन को बाधित करता है। यह आपको निरुत्साहित करता है।

आत्म–विश्वास एवं आत्म–निर्भरता का विकास करिए। इस विषय में कम सोचिए कि अन्य व्यक्ति आपके बारे में क्या सोचते हैं। इससे आपको आत्म–संशय पर विजय प्राप्त करने तथा आत्म–संयम, आत्म–विश्वास एवं आत्म–निर्भरता प्राप्त करने में सहायता मिलेगी।

आत्म–विश्वास एक प्रकार की शक्ति है। यह संकल्प का विकास करती है।

सदैव इस प्रकार सोचिए, ''मैं सफल होऊँगा। मैं अपनी सफलता के प्रति पूर्णत: आश्वस्त हूँ।'' आत्म–संशय रूपी दुर्गुण को कभी अपने मन में स्थान मत दीजिए। आत्म–विश्वास ही आधी सफलता है। आपको अपनी वास्तविक महत्ता से पूर्ण परिचित होना चाहिए। आत्म–विश्वास से पूर्ण व्यक्ति अपने समस्त कार्यों–प्रयासों में सदैव सफलता प्राप्त करता है।

स्वामी शिवानन्द

चक्रासन

विधि : अपनी पीठ के बल लेट जायें। पैरों को घुटनों पर मोड़ें और तलवों को नितम्बों के निकट भूमि पर रखें। हथेलियों को अपने शिर के बगल में इस प्रकार रखें कि उँगलियाँ शरीर की ओर अभिमुख हों। हाथों तथा पैरों पर स्थित रह कर शरीर को शनैः–शनैः ऊपर उठायें और इस भाँति अपने मेरुदण्ड को वक्र बनायें। इस आसन में ५ सेकण्ड तक रहें और इस कालावधि को बढ़ा कर एक या दो मिनट तक ले जायें। सामान्य श्वास–प्रश्वास के साथ मेरुदण्ड पर ध्यान केन्द्रित करें।

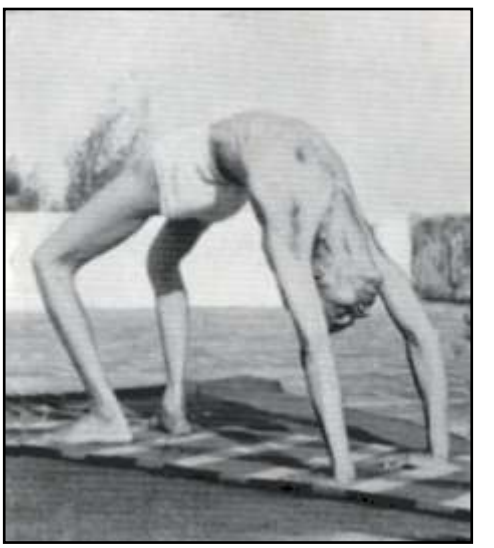

लाभ : इस आसन से शलभ, भुजंग तथा धनुरासन के सभी लाभ प्राप्त होते हैं। इस आसन के समय शरीर के सभी भागों को उपयुक्त व्यायाम मिलता है।

स्वामी चिदानन्द

गहरे श्वसन का व्यायाम

विधि : शवासन में शिथिलन के पश्चात् , अपनी सुविधा के अनुसार किसी एक आसन पर बैठें। बिना कोई आवाज किये दोनों नासारन्ध्रों से पूरक तथा रेचक करें। पूरक करते समय वक्ष और फुफ्फुसों को फुलायें और अनुभव करें कि स्वच्छ प्राण-वायु शरीर में प्रवेश कर रही है और रेचक करते समय फुफ्फुसों को जितना भी सम्भव हो सके सिकोड़ें और अनुभव करें कि समस्त अशुद्धता बाहर की ओर निर्गत हो रही है।

यदि आपको अनुभव हो कि शीत के कारण नासारन्ध्र बन्द हो गये हैं तो दाहिने अँगूठे से दाहिने नासारन्ध्र को धीमे से दबायें और बायें नासारन्ध्र से बिना कोई आवाज उत्पन्न किये श्वास लें और श्वास निकालें। अब दाहिने हाथ की कनिष्ठिका और अनामिका उँगलियों की सहायता से बायें नासारन्ध्र को बन्द करें। दाहिने नासारन्ध्र से बिना आवाज के पूरक तथा रेचक करें। यह प्रक्रिया छह बार करें। शनैः-शनैः इस प्रक्रिया को बारह बार तक बढ़ायें। यह एक आवर्तन हुआ। आप अपनी शक्ति और क्षमता के अनुसार आवर्तन की संख्या बढ़ा सकते हैं।

लाभ : यह श्वास-नली एवं नासा-पथों को स्वच्छ करता, प्रतिश्याय (सर्दी-जुकाम), शिर की पीड़ा आदि से व्यक्ति को मुक्त करता और फुफ्फुसों की श्वसन-क्षमता में वृद्धि करता है।

स्वामी चिदानन्द

डोनेशन सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण सूचना

प्रशासनिक कारणों तथा वर्तमान अकाउण्टिंग व्यवस्था (Accounting System) को थोड़ा सरल बनाने के उद्देश्य से, १० मार्च २०२१ को आयोजित 'बोर्ड ऑफ मैनेजमेण्ट' मीटिंग एवं ११ मार्च २०२१ को आयोजित 'बोर्ड ऑफ ट्रस्टीज' मीटिंग में यह निर्णय लिया गया है कि द डिवाइन लाइफ सोसायटी के लिए भेजे जाने वाले डोनेशन दिनांक १ अप्रैल २०२१ से केवल निम्नलिखित अकाउण्टस हेड्स हेतु ही स्वीकार किये जायेंगे—

जनरल डोनेशन

(१) आश्रम जनरल डोनेशन

(२) अन्नक्षेत्र

(३) मेडिकल रिलीफ

कॉरपस डोनेशन

शिवानन्द आश्रम कॉरपस (मूलधन) फण्ड

अत: भक्तवृन्द से अनुरोध है कि वे केवल उपर्युक्त अकाउण्टस हेड्स हेतु ही डोनेशन भेजें।

आश्रम के भक्त एवं हितैषी जनों को यह भी सूचित किया जाता है कि

- 'आश्रम जनरल डोनेशन' में प्राप्त धनराशि का उपयोग द डिवाइन लाइफ सोसायटी की समस्त धार्मिक, आध्यात्मिक एवं सेवा-सम्बन्धी गतिविधियों हेतु किया जायेगा यथा शिवानन्द होम द्वारा गृहविहीन-निराश्रितों की देखभाल, लेप्रसी रिलीफ वर्क द्वारा कुष्ठरोगियों की सेवा, निर्धन छात्रों को शैक्षिक सहायता, योग-वेदान्त फॉरेस्ट अकादमी का संचालन, नि:शुल्क वितरणार्थ आध्यात्मिक पुस्तकों का मुद्रण, आध्यात्मिक ज्ञान का प्रचार-प्रसार, आश्रम-मन्दिरों में पूजा-अर्चना, आश्रम एवं गौशाला का रख-रखाव तथा आश्रम की नियमित धार्मिक-आध्यात्मिक गतिविधियों का संचालन। इस धनराशि का उपयोग सोसायटी द्वारा समय-समय पर आयोजित अन्य विभिन्न धार्मिक, आध्यात्मिक एवं सेवा-सम्बन्धी कार्यक्रमों हेतु भी किया जायेगा।
- 'मेडिकल रिलीफ' के अन्तर्गत प्राप्त डोनेशन का उपयोग शिवानन्द चैरिटेबल हॉस्पिटल में जरूरतमन्द रोगियों के उपचार हेतु तथा सोसायटी द्वारा संचालित अन्य चिकित्सा-सम्बन्धी कार्यक्रमों हेतु किया जायेगा।
- इसी प्रकार 'शिवानन्द आश्रम कॉरपस (मूलधन) फण्ड' से प्राप्त ब्याज की राशि का सदुपयोग सोसायटी की समस्त गतिविधियों (धार्मिक, आध्यात्मिक एवं सेवा-सम्बन्धी) हेतु किया जायेगा।
- इस सम्बन्ध में यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि सोसायटी अपनी किसी गतिविधि को समाप्त नहीं कर रही है। सोसायटी की सभी आश्रम-सम्बन्धी एवं सेवा-सम्बन्धी गतिविधियाँ पूर्ववत् चलती रहेंगी; यद्यपि डोनेशन स्वीकार करने हेतु अकाउण्टस हेड्स की संख्या कम कर दी गयी है।
- द डिवाइन लाइफ सोसायटी के लिए डोनेशन 'ऑनलाइन डोनेशन सुविधा' द्वारा वेब एड्रेस

https://donations.sivanandaonline.org के माध्यम से अथवा हमारी वेबसाइट www.sivanandaonline.org में दिये गये 'ऑनलाइन डोनेशन' लिंक के माध्यम से भेजा जा सकता है।

- डोनेशन ऋषिकेश में देय बैंकड्राफ्ट अथवा चेक अथवा इलेक्ट्रानिक मनीआर्डर (E.M.O.) द्वारा "The Divine Life Society", Shivanandanagar, Uttarakhand के नाम भी भेजा जा सकता है। कृपया ड्राफ्ट अथवा चेक अथवा ई. एम. ओ. के साथ एक पत्र में डोनेशन का उद्देश्य, अपना डाक पता, फोन नम्बर, ई मेल आई डी तथा पैन नम्बर लिख कर भेजें।
- भक्तवृन्द को यह भी सूचित किया जाता है कि आश्रम-मन्दिरों में पूजा-अर्चना करवाने हेतु कोई धनराशि नहीं ली जायेगी। जो व्यक्ति अपने अथवा अपने परिवार के किसी सदस्य के नाम पर पूजा करवाना चाहते हैं, वे इस सम्बन्ध में आश्रम के महासचिव अथवा परमाध्यक्ष को आवश्यक विवरण के साथ एक अनुरोध-पत्र ई मेल अथवा डाक द्वारा भेज सकते हैं जिससे कि उनके नाम पर पूजा सम्पन्न हो सके।
- सोसायटी को भेजे जाने वाले सदस्यता शुल्क, प्रवेश शुल्क, आजीवन सदस्यता शुल्क, पैट्रनशिप शुल्क, शाखा-सम्बद्धता शुल्क एवं एस पी एल को भेजी जाने वाली अग्रिम धनराशि से सम्बन्धित प्रावधानों एवं निर्देशों में कोई परिवर्तन नहीं किया गया है।

द डिवाइन लाइफ सोसायटी मुख्यालय के सदस्यता-शुल्क एवं शाखाओं के सम्बद्धता-शुल्क की दरें

१.	नवीन सदस्यता-शुल्क*		₹ १५०/-
	प्रवेश-शुल्क	₹ ५०/-	
	सदस्यता-शुल्क	₹ १००/-	
२.	सदस्यता नवीकरण-शुल्क (वार्षिक)		₹ १००/-
३.	नयी शाखा खोलने का शुल्क**		₹ १०००/-
	प्रवेश-शुल्क	₹ ५००/-	
	सम्बद्धता-शुल्क	₹ ५००/-	
४.	शाखा-सम्बद्धता नवीकरण शुल्क (वार्षिक)		₹ ५००/-

* सदस्यता के इच्छुक प्रार्थी कृपया प्रार्थना-पत्र के साथ अपना फोटो पहचान-पत्र (Photo Identity) तथा निवास-स्थान के प्रमाण-स्वरूप कोई दस्तावेज (Residential Proof) भेजें।

**नयी शाखा खोलने के लिए मुख्यालय से लिखित अनुमति लेनी होगी।

⇨ कृपया सदस्यता-शुल्क और शाखा-सम्बद्धता-शुल्क ऋषिकेश में स्थित किसी भी बैंक के नाम बने डिमांड ड्राफ्ट अथवा चेक द्वारा भेजें।

शिवानन्द होम द्वारा सेवा

''शिवानन्द होम उन एकाकी एवं मरणासन्न लोगों की प्रेमपूर्ण देख-रेख का एक केन्द्र है, जो सड़क के किनारे पड़े मिलते हैं, जिनकी देख-रेख करने वाला कोई नहीं है, जिन लोगों के रहने के लिए कोई घर नहीं है, जिनका न तो स्थायी और न ही अस्थायी रूप से कोई ठिकाना है, जो रोगग्रस्त हो जाते हैं, गुम हो जाते हैं अथवा अपने परिवार द्वारा त्याग दिये जाते हैं।''

परम पावन श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज

उनका त्वचा रोग शिवानन्द होम में उनके आने का कारण बना। उनके पूरे शरीर पर घाव एवं फोड़े थे जिन पर निरन्तर खुजली होती रहती थी। उन्होंने अपनी सारी जमा पूँजी इस रोग के महँगे उपचार हेतु खर्च कर दी थी। सबके द्वारा तिरस्कृत होने पर, उन्होंने शरीर एवं मन की असहनीय दु:खपूर्ण स्थिति के साथ अपने गाँव को छोड़ दिया।

यहाँ होम में त्वचा रोग विशेषज्ञ को यह जानने में काफी समय लगा कि उनका रोग संक्रामक नहीं था। उनकी कई जाँचें की गयीं तथा प्राप्त रिपोर्ट के अनुसार औषधियाँ देना प्रारम्भ किया गया। उनका रोग दीर्घकालिक था, अत: अपनी त्वचा को सुरक्षित रखने हेतु उनके लिए जीवनपर्यन्त औषधियाँ लेना आवश्यक था। परन्तु उनकी दशा में तेजी से सुधार आने लगा और अब उन्हें पहचानना भी कठिन हो गया।

उपचार होने के बाद इन सज्जन ने श्री गुरुदेव के चरणकमलों में रह कर अपनी सेवाएँ अर्पित करने का निश्चय किया। शीघ्र ही, उन्होंने होम की रसोई में भजन एवं श्री हनुमान चालीसा गाते हुए भोजन बनाना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार, वे शिवानन्द होम के मुख्य कार्यकर्ताओं में सम्मिलित हो गये। रसोई में उनका कार्य केवल भोजन बनाना नहीं था, अपितु अपने सहयोगियों के कार्यों का निर्देशन एवं निरीक्षण करना भी था। हृदयाघात के बाद उनका स्वास्थ्य बहुत दुर्बल हो गया, वे मधुमेह रोग तथा लीवर, किडनी एवं लंग्स के रोगों से भी आक्रान्त हो गये। वे हमेशा कहते थे, ''मैं जब तक कार्य करने में समर्थ हूँ, तब तक अपने कार्य स्वयं करूँगा।'' वे अपने भोजन एवं विश्राम आदि के लिए एक कठोर दिनचर्या का पालन करते थे।

इस माह स्थिति कुछ भिन्न थी। वे अत्यधिक बीमार हो गये और उनके लिए अपने आप खड़े होना भी कठिन हो गया। चिकित्सक ने बताया कि उन्हें मूत्र-संक्रमण हुआ है। ड्रिप के माध्यम से दवाईयाँ दी जाने लगी। उनकी कोविड-१९ जाँच रिपोर्ट नेगेटिव आयी, परन्तु उनकी दशा दिन-प्रतिदिन अस्थिर होती गयी और एक सुबह उन्होंने अपनी अन्तिम श्वास ली।

उनके हँसमुख स्वभाव, दयापूर्ण हृदय, शान्त मन तथा सबकी सहायता करने की तत्परता के कारण होम में सभी उनसे प्रेम करते थे। उनके सहायक तथा कुछ अन्तेवासी उन्हें 'चाचा' कहकर पुकारते थे; वे सभी अपने चाचा को बहुत याद करेंगे। श्री गुरुदेव उनकी पावन आत्मा को शाश्वत शान्ति एवं आनन्द से आशीर्वादित करें।

ॐ शान्ति: शान्ति: शान्ति:।

''हम सब नाम-रूपों में तुम्हारा दर्शन करें। तुम्हारी अर्चना के ही रूप में इन नाम-रूपों की सेवा करें। सदा तुम्हारा ही स्मरण करें। सदा तुम्हारी ही महिमा का गान करें। तुम्हारा ही कलिकल्मषहारी नाम हमारे अधर-पुट पर हो। सदा हम तुममें ही निवास करें।''

परम श्रद्धेय श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज

डी एल एस शाखाओं के प्रतिवेदन

भारतीय शाखाएँ

भुवनेश्वर (ओडिशा): शाखा द्वारा दैनिक पादुका-पूजा तथा माह की २४ तारीख को श्री रामनाम जप कार्यक्रम नियमित रूप से चलते रहे । कोविड महामारी के कारण प्रत्येक गुरुवार एवं रविवार को ऑनलाइन सत्संग आयोजित किये गये। ११ मार्च को महाशिवरात्रि 'ॐ नमः शिवाय' मन्त्र के जप, रुद्राभिषेक एवं भजन-कीर्तन सहित मनायी गयी ।

चाँदपुर (ओडिशा): दैनिक पूजा, प्रत्येक गुरुवार को पादुका-पूजा और शनिवार को साप्ताहिक सत्संग यथावत् चलते रहे। सद्गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज तथा परम पूज्य श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज के मासिक जयन्ती दिवस ८ एवं २४ को चल सत्संग आयोजित किये गये। ११ मार्च को महाशिवरात्रि पर्व भावपूर्वक मनाया गया तथा १४ मार्च को सुन्दरकाण्ड पाठ किया गया। २१ अप्रैल को श्री रामनवमी 'श्री राम जय राम जय जय राम' मन्त्र के कीर्तन सहित मनायी गयी तथा २७ अप्रैल को श्री हनुमान जयन्ती श्री हनुमान चालीसा पाठ सहित मनायी गयी।

छत्रपुर (ओडिशा): शाखा द्वारा दैनिक पूजा, प्रत्येक गुरुवार को साप्ताहिक सत्संग तथा माह की ८ और २४ को पादुका-पूजा कार्यक्रम नियमित रूप से चलते रहे । ७ मार्च को साधना दिवस आयोजित किया गया तथा ४ एवं ८ मार्च को एक भक्त के आवास पर विशेष सत्संगों का आयोजन किया गया। ११ मार्च को महाशिवरात्रि 'ॐ नमः शिवाय' मन्त्र के जप सहित मनायी गयी तथा २७ मार्च को सुन्दरकाण्ड पाठ किया गया।

चंडीगढ़ (यू.टी.): प्रत्येक बुधवार एवं गुरुवार को साप्ताहिक सत्संग, माह की ८ एवं २४ को अखण्ड महामन्त्र संकीर्तन के अतिरिक्त, ११ मार्च को महाशिवरात्रि श्रद्धापूर्वक मनायी गयी। श्री रामनवमी के उपलक्ष्य में १३ से २१ अप्रैल तक श्री दुर्गासप्तशती एवं श्री रामचरितमानस का पाठ किया गया। २७ अप्रैल को श्री हनुमान जयन्ती मनायी गयी।

लखनऊ (उत्तर प्रदेश): शाखा द्वारा ११ अप्रैल को प्रार्थना, भजन, मन्त्र जप, गीता पाठ और स्वाध्याय सहित विशेष सत्संग आयोजित किया गया तथा 'शिवानन्द एजुकेशन सर्विस' के अन्तर्गत बालदीप पब्लिक स्कूल के ४५ निर्धन बालकों में

पुस्तकें वितरित की गयीं।

मानिकगोडा (ओडिशा): प्रत्येक गुरुवार एवं रविवार को साप्ताहिक सत्संग नियमित रूप से चलते रहे । १९ अप्रैल को विशेष सत्संग आयोजित किया गया। २१ अप्रैल को श्री रामनवमी तथा २७ अप्रैल को श्री हनुमान जयन्ती श्रद्धापूर्वक मनायी गयी।

राउरकेला (ओडिशा): शाखा परिसर में प्रत्येक गुरुवार एवं रविवार को पादुका-पूजा, भजन-कीर्तन सहित साप्ताहिक सत्संग एवं सोमवार को श्री विष्णुसहस्रनाम पारायण आदि नियमित गतिविधियाँ पूर्ववत् चलती रहीं।

स्टील टाउनशिप, राउरकेला (ओडिशा): प्रत्येक सोमवार को निःशुल्क योग एवं संगीत कक्षा तथा गुरुवार को पादुका-पूजा इत्यादि कार्यक्रम नियमित रूप से चलते रहे। १८ से २४ मार्च तक श्रीमद्भगवद्गीता पर प्रवचन आयोजित किये गये तथा इसके पश्चात् २५ मार्च से विवेकचूड़ामणि से स्वाध्याय प्रारम्भ किया गया। २८ मार्च को युवा विकास शिविर का आयोजन किया गया।

साउथ बलांडा (ओडिशा): प्रातः-सायं दैनिक पूजा, प्रत्येक शुक्रवार को सत्संग, माह की ८ एवं २४ तारीख को पादुका-पूजा के अतिरिक्त, ११ मार्च को महाशिवरात्रि 'ॐ नमः शिवाय' मन्त्र के जप सहित मनायी गयी। १४ मार्च को विशेष सत्संग आयोजित किया गया तथा ३१ मार्च को विश्व-शान्ति हेतु अखण्ड महामन्त्र संकीर्तन किया गया।

बीकानेर (राजस्थान): अप्रैल माह में दैनिक पूजा, प्रत्येक शनिवार को श्री हनुमान चालीसा एवं सुन्दरकाण्ड पाठ, माह की प्रत्येक २४ तारीख को हवन, सत्संग इत्यादि नियमित गतिविधियाँ चलती रहीं। कोविड महामारी के व्यापक संक्रमण के कारण, २७ अप्रैल को श्री हनुमान जयन्ती के उपलक्ष्य में भक्तों द्वारा अपने घरों में ही श्री हनुमान चालीसा के शत पाठ किये गये ।

राजा पार्क, जयपुर (राजस्थान): शाखा द्वारा दैनिक पूजा, पारायण, हवन, सत्संग इत्यादि की आध्यात्मिक गतिविधियाँ तथा ज्ञान-प्रसार, स्वास्थ्य, अन्नदान एवं जल सेवा कार्यक्रम सभी पूर्ववत् नियमित रूप से चलते रहे। ११ मार्च को महाशिवरात्रि 'ॐ नमः शिवाय' मन्त्र के जप, रुद्राभिषेक एवं भजन-कीर्तन सहित भक्तिभावपूर्वक मनायी गयी तथा २८ मार्च को होलिका उत्सव मनाया गया।

हिन्दी में उपलब्ध पुस्तकों की नवीनतम सूची

श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज कृत

अच्छी नींद कैसे सोयें	₹ ७०/-
अध्यात्मविद्या	१४०/-
कर्म और रोग	२५/-
कर्मयोग-साधना	१३०/-
गीता-प्रबोधिनी	५५/-
गुरु-तत्त्व	५५/-
घरेलू चिकित्सा	१९०/-
जपयोग	१२०/-
जीवन में सफलता के रहस्य	१८५/-
ज्योति, शक्ति और प्रज्ञा	४०/-
दिव्योपदेश	३५/-
देवी माहात्म्य	११५/-
धनवान् कैसे बनें	५०/-
धारणा और ध्यान	१७०/-
ध्यानयोग	१३०/-
प्राणायाम-साधना	७५/-
बालकों के लिए दिव्य जीवन सन्देश	१००/-
ब्रह्मचर्य-साधना	११०/-
भगवान् शिव और उनकी आराधना	१५०/-
भगवान् श्रीकृष्ण	१३०/-
मन : रहस्य और निग्रह	२०५/-
मरणोत्तर जीवन और पुनर्जन्म	१३५/-
मानसिक शक्ति	१३०/-
मूर्तिपूजा का दर्शन और महत्त्व	३०/-
मैं इसका उत्तर दूँ?	१३०/-
श्रीमद्भगवद्गीता	४२५/-
योगाभ्यास का मूलाधार	१८५/-
योगवासिष्ठ की कथाएँ	९०/-
योगासन	११५/-
विद्यार्थी-जीवन में सफलता	६०/-
शिवानन्द-आत्मकथा	₹ १२०/-
सत्संग भजन माला	१६०/-
सत्संग और स्वाध्याय	६०/-
सद्गुणों का अर्जन एवं दुर्गुणों का नाश किस प्रकार करें	१९५/-
सन्त-चरित्र	२३५/-
सौ वर्ष कैसे जियें	९५/-
साधना	३२०/-
स्वरयोग	८०/-
हठयोग	१००/-
हिन्दूतत्त्व-विवेचन	१६०/-

श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज कृत

अध्यात्म-प्रसून	३५/-
आलोक-पुंज	१०५/-
ज्योति-पथ की ओर	१०५/-
त्याग : शरणागति	२५/-
भगवान् का मातृरूप	७०/-
मोक्ष सम्भव है!	२५/-
योग-सन्दर्शिका	५५/-
शाश्वत सन्देश	५५/-
शोकातीत पथ	१४०/-
साधना सार	३५/-

अन्य लेखक कृत

एकादशोपनिषदः (मूल मन्त्राः)	१४०/-
गुरुदेव कुटीर में भजन-कीर्तन	५०/-
चिदानन्दम्	२००/-
जीवन-स्रोत	१५०/-
शारीरकमीमांसादर्शनम्	१५/-
शिव स्तोत्र माला	३५/-
श्रीमद्भगवद्गीता (मूलमात्रम्)	१००/-
सर्वस्नेही हृदय	१००/-
दिव्य योगा	९०/-

५०% अग्रिम। पैकिंग अतिरिक्त । विस्तृत जानकारी के लिए निम्नांकित पते पर सम्पर्क करें :

द डिवाइन लाइफ सोसायटी, पत्रालय : शिवानन्दनगर—२४९१९२, जिला : टिहरी-गढ़वाल, उत्तराखण्ड, भारत

फोन : ०१३५-२४३४७८०, २४३००४०; E-mail : bookstore@sivanandaonline.org

For online orders and Catalogue : dlsbooks.org

NEW RELEASE!

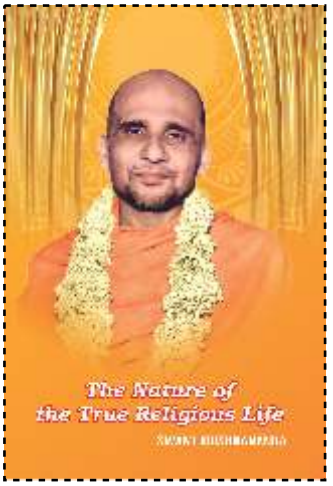

THE NATURE OF THE TRUE RELIGIOUS LIFE

Pages: 248 **Price: ₹ 235/-**

First Edition: 2021

A masterly treatise on some intricate spiritual themes by Worshipful Sri Swami Krishnanandaji Maharaj.

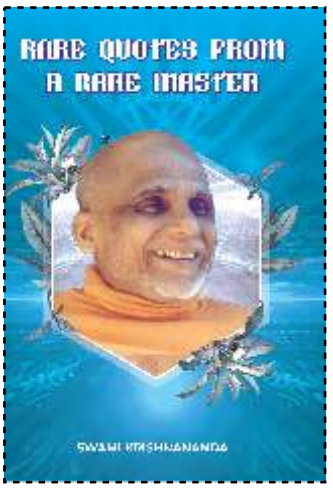

RARE QUOTES FROM A RARE MASTER

Pages: 128 **Price: ₹ 100/-**

First Edition: 2021

A beautiful compilation of inspiring and illuminating handwritten messages of Worshipful Sri Swami Krishnanandaji Maharaj.

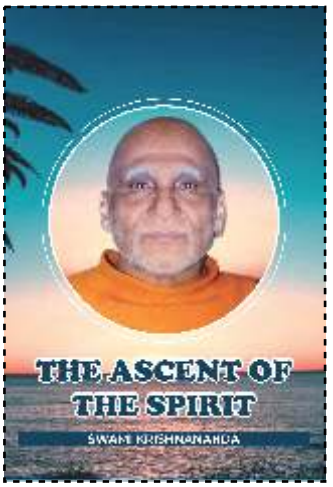

THE ASCENT OF THE SPIRIT

Pages: 256 **Price: ₹ 160/-**

Third Edition: 2021

बीस महत्त्वपूर्ण आध्यात्मिक नियम

(परम श्रद्धेय श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज)

१. **ब्राह्ममुहूर्त-जागरण**—नित्यप्रति प्रातः चार बजे उठिए। यह ब्राह्ममुहूर्त ईश्वर के ध्यान के लिए बहुत अनुकूल है।

२. **आसन**—पद्मासन, सिद्धासन अथवा सुखासन पर जप तथा ध्यान के लिए आधे घण्टे के लिए पूर्व अथवा उत्तर दिशा की ओर मुख करके बैठ जाइए। ध्यान के समय को शनैः-शनैः तीन घण्टे तक बढ़ाइए। ब्रह्मचर्य तथा स्वास्थ्य के लिए शीर्षासन अथवा सर्वांगासन कीजिए। हलके शारीरिक व्यायाम (जैसे टहलना आदि) नियमित रूप से कीजिए। बीस बार प्राणायाम कीजिए।

३. **जप**—अपनी रुचि या प्रकृति के अनुसार किसी भी मन्त्र (जैसे '**ॐ**', '**ॐ नमो नारायणाय**', '**ॐ नमः शिवाय**', '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**', '**ॐ श्री शरवणभवाय नमः**', '**सीताराम**', '**श्री राम**', '**हरि ॐ**' या गायत्री) का १०८ से २१,६०० बार प्रतिदिन जप कीजिए (मालाओं की संख्या १ और २०० के बीच)।

४. **आहार-संयम**—शुद्ध सात्त्विक आहार लीजिए। मिर्च, इमली, लहसुन, प्याज, खट्टे पदार्थ, तेल, सरसों तथा हींग का त्याग कीजिए। मिताहार कीजिए। आवश्यकता से अधिक खा कर पेट पर बोझ न डालिए। वर्ष में एक या दो बार एक पखवाड़े के लिए उस वस्तु का परित्याग कीजिए जिसे मन सबसे अधिक पसन्द करता है। सादा भोजन कीजिए। दूध तथा फल एकाग्रता में सहायक होते हैं। भोजन को जीवन-निर्वाह के लिए औषधि के समान लीजिए। भोग के लिए भोजन करना पाप है। एक माह के लिए नमक तथा चीनी का परित्याग कीजिए। बिना चटनी तथा अचार के केवल चावल, रोटी तथा दाल पर ही निर्वाह करने की क्षमता आपमें होनी चाहिए। दाल के लिए और अधिक नमक तथा चाय, काफी और दूध के लिए और अधिक चीनी न माँगिए।

५. **ध्यान-कक्ष**—ध्यान-कक्ष अलग होना चाहिए। उसे तालेकुंजी से बन्द रखिए।

६. **दान**—प्रतिमाह अथवा प्रतिदिन यथाशक्ति नियमित रूप से दान दीजिए अथवा एक रुपये में दस पैसे के हिसाब से दान दीजिए।

७. **स्वाध्याय**—गीता, रामायण, भागवत, विष्णुसहस्रनाम, आदित्यहृदय, उपनिषद्, योगवासिष्ठ, बाइबिल, जेन्दअवस्ता, कुरान आदि का आधा घण्टे तक नित्य स्वाध्याय कीजिए तथा शुद्ध विचार रखिए।

८. **ब्रह्मचर्य**—बहुत ही सावधानीपूर्वक वीर्य की रक्षा कीजिए। वीर्य विभूति है। वीर्य ही सम्पूर्ण शक्ति है। वीर्य ही सम्पत्ति है। वीर्य जीवन, विचार तथा बुद्धि का सार है।

९. **स्तोत्र-पाठ**—प्रार्थना के कुछ श्लोकों अथवा स्तोत्रों को याद कर लीजिए। जप अथवा ध्यान आरम्भ करने से पहले उनका पाठ कीजिए। इससे मन शीघ्र ही समुन्नत हो जायेगा।

१०. **सत्संग**—निरन्तर सत्संग कीजिए। कुसंगति, धूम्रपान, मांस, शराब आदि का पूर्णतः त्याग कीजिए। बुरी आदतों में न फँसिए।

११. **व्रत**—एकादशी को उपवास कीजिए या केवल दूध तथा फल पर निर्वाह कीजिए।

१२. **जप-माला**—जप-माला को अपने गले में पहनिए अथवा जेब में रखिए। रात्रि में इसे तकिये के नीचे रखिए।

१३. **मौन-व्रत**—नित्यप्रति कुछ घण्टों के लिए मौन-व्रत कीजिए।

१४. **वाणी-संयम**—प्रत्येक परिस्थिति में सत्य बोलिए। थोड़ा बोलिए। मधुर बोलिए।

१५. **अपरिग्रह**—अपनी आवश्यकताओं को कम कीजिए। यदि आपके पास चार कमीजें हैं, तो इनकी संख्या तीन या दो कर दीजिए। सुखी तथा सन्तुष्ट जीवन बिताइए। अनावश्यक चिन्ताएँ त्यागिए। सादा जीवन व्यतीत कीजिए तथा उच्च विचार रखिए।

१६. **हिंसा-परिहार**—कभी भी किसी को चोट न पहुँचाइए **(अहिंसा परमो धर्मः)**। क्रोध को प्रेम, क्षमा तथा दया से नियन्त्रित कीजिए।

१७. **आत्म-निर्भरता**—सेवकों पर निर्भर न रहिए। आत्म-निर्भरता सर्वोत्तम गुण है।

१८. **आध्यात्मिक डायरी**—सोने से पहले दिन-भर की अपनी गलतियों पर विचार कीजिए। आत्म-विश्लेषण कीजिए। दैनिक आध्यात्मिक डायरी तथा आत्म-सुधार रजिस्टर रखिए। भूतकाल की गलतियों का चिन्तन न कीजिए।

१९. **कर्तव्य-पालन**—याद रखिए, मृत्यु हर क्षण आपकी प्रतीक्षा कर रही है। अपने कर्तव्यों का पालन करने में न चूकिए। सदाचारी बनिए।

२०. **ईश-चिन्तन**—प्रातः उठते ही तथा सोने से पहले ईश्वर का चिन्तन कीजिए। ईश्वर को पूर्ण आत्मार्पण कीजिए।

यह समस्त आध्यात्मिक साधनाओं का सार है। इससे आप मोक्ष प्राप्त करेंगे। इन नियमों का दृढ़तापूर्वक पालन करना चाहिए। अपने मन को ढील न दीजिए।

Registrar of Newspapers for India
No. 71610/1999

Postal-Registration No. TRI/005/2021-23

LICENSED TO POST WITHOUT PREPAYMENT
(Licence No. WPP No. 02/21-23, Valid upto: 31-12-2023)
DATE OF PUBLICATION: 20th OF EVERY MONTH
DATE OF POSTING: 20th OF EVERY MONTH
Posted at Shivanandanagar, Tehri-Garhwal, Uttarakhand

जून २०२१

संचित, पुरुषार्थ और प्रारब्ध कर्म

हमारे संचित कर्म एक तरकश के समान होते हैं; आगामी कर्म उस बाण के समान हैं जो छूटने को तैयार है और प्रारब्ध लक्ष्य की ओर चलाये गये उस बाण के समान है जो लौटने वाला नहीं है तथा जिसे लक्ष्य पर जा कर ही लगना है।

संचित कर्म संग्रह-कक्ष के समान है। बिक्री के लिए रखे गये सामान के जैसा है प्रारब्ध कर्म। प्रतिदिन की बिक्री की आय है आगामी कर्म।

संचित कर्म वे होते हैं, जो हमने पहले से कमा कर संचित किये हैं। प्रारब्ध कर्म वे हैं, जो परिपक्व हो गये हैं, फल देने को तैयार हैं और आगामी या क्रियमाण कर्म वे हैं, जो अब करने को हैं।

संचित कर्म की तुलना अन्न के बड़े गोदाम से की जा सकती है। प्रारब्ध कर्म की तुलना उस अन्न-राशि से की जा सकती है, जो वर्ष-भर के उपयोग के लिए अलग निकाल कर रख दी जाती है और जो अन्न चालू वर्ष खेत में पक रहा है, उससे आगामी या क्रियमाण कर्म की तुलना की जा सकती है।

ब्रह्मज्ञान के द्वारा संचित कर्मों को समाप्त किया जा सकता है। प्रारब्ध कर्मों को (भले व्यावहारिक दृष्टि से ही सही) भोगना ही पड़ता है। क्रियमाण कर्म जैसा कोई कर्म नहीं है, क्योंकि ज्ञानी में अकर्तृत्व या साक्षित्व का भाव होता है।

—स्वामी शिवानन्द

सेवा में

'द डिवाइन लाइफ ट्रस्ट सोसायटी' की ओर से स्वामी अद्वैतानन्द द्वारा 'योग-वेदान्त फारेस्ट एकाडेमी प्रेस, पो. शिवानन्दनगर, जि. टिहरी-गढ़वाल, उत्तराखण्ड, पिन २४९१९२' से मुद्रित तथा 'द डिवाइन लाइफ सोसायटी मुख्य कार्यालय, पो. शिवानन्दनगर, जि. टिहरी-गढ़वाल, उत्तराखण्ड, पिन २४९१९२' से प्रकाशित। फोन : ०१३५-२४३००४०, २४३११९०
E-mail: generalsecretary@sivanandaonline.org ; Website : www.sivanandaonline.org ; www.dlshq.org
सम्पादक : स्वामी निर्लिप्तानन्द